

प्रकाशक —

श्री अण्णरचन्द भैरोदान मठिया

जैन पारमार्थिक सभा,

बीकानेर

प्रथमावृत्ति

१०००

प्रथमावृत्ति

मुद्रकः—

श्री जालमसिंह के प्रबन्ध

गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,

जयपुर में मद्रि

‘ज्ञानक्रियाया मोक्षः’ मध्यक ज्ञान और क्रिया में मोक्ष की प्राप्ति होती है, गुप्त आचार के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों की आवश्यकता होती है। इसलिए आचार का परिपारक यह अष्ट पदनें बनाया गया है। अगया किसी अवेद्या विरोध में ज्ञान की ओर। क्रिया की प्रयामता होने से क्रिया रूप आचार को बनलाने वाला यह मूत्र भी प्रगल है। इसीलिए यह पदला अष्ट है।

इसमें दो अंतःकथ है। पहले धनःकथ में नी अशयन में और दूसरे अंतःकथ में मोक्ष अशयन में। दोनों अंतःकथों में कुल २४ अशयन हैं। उनमें २४ रहे हैं।

इस प्रकार ज्ञानामों में आचाराल मूत्र ल प्रयम ग्यान है। इसका पटन-पाटन आत्महत्याण एवं मोक्षप्राप्ति का कारण है। इसलिये मूत्रों को इस मूत्र के पटन-पाटन का लाभ अशयन लेना चाहिये।

निवेदकः—

वेणुचन्द्र पौठिया ‘वीरपुत्र’

जैन मिसान्गशास्त्री, न्यायमीय, व्याकरणमीय,

वीरानेर

आचार—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य रूप मोक्षमार्गों की आराधना के लिए किया जाने वाला विविध आचार ।

नौका—गिरा सादल करने की विधि ।

विमय—ज्ञान और ज्ञानी की तथा वक्तों की विनय-भक्ति ।

विनेय—शिष्यों का स्वरूप और उनका आचार ।

भाषा—आचार प्रकार की भाषा का स्वरूप ।

परम तत्परि—बोध महाव्रत, दस प्रकार का अमल धर्म, सतरह प्रकार का संवत्स, दस प्रकार का वैशाख्य, अक्षय्य की नव याद, ज्ञान दर्शन, चारित्र्य, द्वादश प्रकार का तप और चार कथाओं का निषह (रमन) ।

द्वाल तत्परि—आर पिल्लुविमुक्ति, पांच मनिति, बारह भाषना, बारह भिक्षुपद्धिमा, पांच दन्द्रियों का दमन, वस्त्रोपकरण की पहिनेइला, तीन मुनिवर्ग, द्रव्य देश काल भाव के भेद में चार प्रकार का अभिषेक ।

भाषा—संलग्न रूप वाक्का का बालन ।

वृत्ति—विविध अधिपश्यो को धारण करके संयम की पुष्टि करना ।

आचार के संज्ञेय से पांच भेद हैं—१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चारित्र्याचार, ४ तप आचार, ५ धीर्योपाचार । संयम स्वरूप का ज्ञान करने के कारणभूत भुक्तज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है । दर्शन अर्थान् संयमस्वरूप की निःशक्ति निःकालित चारित्र्य से शुद्ध आराधना करना दर्शनाचार है । ज्ञानपूर्वक और महापूर्वक संयमाचार्य योगों का त्याग करना चारित्र्य है, चारित्र्य का संयम करना चारित्र्याचार है । आभ्यन्तर और बाह्य बारह प्रकार का तप करना तप आचार है । अपनी शक्ति का गोपन न करने हुए अभिषेकों से बचावलि प्रवृत्ति करना धीर्योपाचार है ।

'मानक्रिया'या मोक्ष' मर्याद ज्ञान और क्रिया में मोक्ष की प्राप्ति होती है, शुद्ध आचार के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों की आवश्यकता होती है। इसलिये आचार का समिपारक यह अर्थ पहले यताया गया है। अथवा किसी अथवा विशेष से ज्ञान की अथवा क्रिया की प्रदानता होने से क्रिया स्व आचार को यतज्ञाने याज्ञा यह मूल भी प्रभाव है, इसीलिए यह पहला अर्थ है।

इसमें दो प्रत्यक्षता हैं। पहले प्रत्यक्षता में जो आचार्यन में और दूसरे प्रत्यक्षता में मोक्ष अर्थयन है। दोनों प्रत्यक्षताओं में प्रत्यक्ष आचार्यन है। उनमें यह अर्थ है।

इस प्रकार ज्ञानागमों में आचार्यन मूल का प्रथम स्थान है। इसका पटन-पाठन आत्मरक्षणार्थ एवं मोक्षप्राप्ति का कारण है। इसलिये मूल्य तुरंत को इस मूल के पटन-पाठन का साथ आवश्यक ज्ञान वादिन।

निवेदकः—

धैर्यचन्द्र पीठिया 'धीरपुत्र'

जैन मिसान्तराक्षी, न्यायतीर्थ, व्याकरणतीर्थ,

वीकानेर

बालपुत्रीय महावीरसंघीय जैन मुनि श्री फूलचन्द्रजी महाराज जैन धर्मोपदेष्टा की

मम्मति

परिचय-यवचन्द्रजी कोटिया जैन न्याय, व्याकरण नीति, सिद्धान्त शास्त्री ने प्रथम अष्टश्री आचारंग सूत्र का हिन्दी भाषा में मन्दार भाषा में किया है। मूलपाठ अन्यभाषा में भाषा में की प्रियंती न पुस्तक की उपयोगिता में चार चोद समा दिये हैं। पद्यति महाकवि हैं। सूत्र में प्रथम करने वालों के लिए यह अनुवाद पद्य उपयोगी है। आचारंग सूत्र का इस लक्ष्य का हिन्दी भाषा में यह भाषा प्रथम अनुवाद हुआ है। यह भाषा साधनी, आयक, भाषिका रूप चतुर्भिध मंत्र के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करेगा। यह अनुवाद विभी विषय में लिख नहीं है। यह भाषा अभीमान लक्ष्य करेगा है। पुस्तक हाथ में आते ही प्रतिदिन व्याख्या करने की प्रयत्न करके पढ़ना होगा। बिना पढ़ना अनुवाद मर्यादक मर्याद है। इसी प्रकार दूसरे धुतरुन्ध का भी अनुवाद हो जाय तो सोने में सुहावे वाला तनि वाचना हो। यह अनुवाद को महान भाव पड़े।

पद्य

दशप्रसाद लैन

गुदमान (यज्ञा)

ज्ञातपुत्र महावीर जैन संघीय

'पुष्प भिक्षु'

। अही गन्धी सब सुख दुःख की परबाह न करके सब अगह समसाव रखना । इस आश्वयन
में बार ७६११ है—

- १ श्रेता—बाह्य म भोजन । दृष्टा होन है । अज्ञानी दुष्य से आगते हुए भी भाव से मोने हुए हैं और १४
जानी मुनि इहक से सात हुए भी भाव से सदा आगते हैं । बीर—मुनि परीषद उपसर्गों को सम-
वाक से रुदक करता है ।
- २ श्रेता—अब को मूल्य विक है । पाप क कटुव फल । पापों को रगगने का उपदेश । मोचायी को बास १००
को अावन्तर दानो प्रकार क ग्रन्थों को लेक कर विपदासक्ति का स्थल बनना चाहिए ।
- ३ श्रेता—मुनि का अथभावा होना चाहिए । अज्ञा अहि के कारण पाप का प्रहार बना परीषद सहने १००
में न के कोर मुनि नही बनता है, उसके लिए इहय में संयम होना चाहिए । आत्मा का मरणा
मित्र का आना ही है
- ४ श्रेता—कोय मान साया लोभ—दुन कषादो को सोझने का उपदेश । ११३

श्रीता आश्वयन

सौदमार । मारकत्व । इस आश्वयन में बार उरेशे हैं—

- १ श्रेता—वशाओं के वधाणें स्वरूप का कथन । समझिन का वर्णन । ११६
- २ श्रेता—बाह्य और विजया का वर्णन । परमल का मुनिपूर्ण क स्वरूप । ११४
- ३ श्रेता—राज का वर्णन । १२१
- ४ श्रेता—अंश में विवर १२२३ । १२२

लोकांगार । इस अर्थमय में एक पदो है ।

१. पदो—ओहो ! यह मूल दस-आधे का भाग । भागों के भाग का उपदेश । प्राणिमों की प्रकृति १२६

कर्मों भागों । विषयमयों में मूल अर्थमय है ।

२. पदो—भागों में मूलमय भागों की मूलमय भाग का उपदेश । युधि किमी प्रकार का परिभाषा न १२७

३. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १२८

४. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १२९

५. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १३०

६. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १३१

७. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १३२

८. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १३३

९. पदो—भागों में मूलमय भागों की प्रकृति भागों में प्रकृति मय १३४

अन्वयार्थः—(अ) मेरा (आत्मा) आत्मा (आत्मा) भिन्न-भिन्न गतियों में उन्मत्त होने वाला (कथित) है, अथवा (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा भिन्न-भिन्न गतियों में उन्मत्त होने वाला (कथित) नहीं है ? तथा (अहं) मैं (के) कौन (आत्मी) था और (इत्थो) इतने शरीर में (एक) एक संसार में (ए-वा) दूसरे जन्म में (के) क्या (अविष्मामि) होऊँगा ? ॥३॥

साक्षात् प्रत्यक्ष ज्ञानानुवर्णीय के उद्भव में (जन्म) ज्ञान-शक्ति ठेक गई है यह जीव यह नहीं जानता कि मैं पूर्वभव में कौन था और आत्मा क्या होऊँगा

मे तं पुण ज्ञाणं उज्ज, मह मम्मदृग्गणं परचासगणं अण्णेमि वा अंतिण मोल्ला तंजहाः —

पुरन्ध्रिमाओ वा दिमाओ आगओ अहमंमि जाव अण्णगरीओ दिमाओ अणुदिमाओ वा आगओ अहमंसि, गन्धमंसोमि तं गागं अवट -- अन्वि म आया उववाटण, जो इमाओ दिमाओ वा अणुदिमाओ वा अणुसंनरह, सोहं ॥४॥

अन्वयार्थः—यह पुरुष (आत्मा) अपनी सम्मति-मृदम बुद्धि एवं जतिस्मरण ज्ञान द्वारा तथा (परचासणं) तीव्र-जति के उपपन्न से (अपना आत्मा) दूसरों के (आत्मा) पाव से (गन्धवा) सुनकर (पुण) फिर (जं) पूर्वजित ज्ञानों को (अहं) जानने के लिये कि (अहं) मैं (आत्मा) पुनः (दिमाओ) दिशा से (आगओ अंमि) आया हूँ (वा) अथवा (जाव) यावत् (अण्णगरीओ) अणुगरीओ दिमाओ वा (अणुदिमाओ) अणुदिमाओ से (अहं) मैं (आगओ अंमि) आया हूँ (गन्धमंसोमि) गन्धमंसोमि वा (आया उववाटण) आया उववाटण (जो इमाओ दिमाओ वा अणुदिमाओ वा अणुसंनरह) जो इमाओ दिमाओ वा अणुसंनरह, सोहं ॥४॥

इसमें चैव त्रीविपम परितंणमाणायाण् जाडमणमोयणाए दुक्खपडिमायहेउं ॥११॥

अन्वयार्थः — इस जीवन्मुक्ता जीवन के लिए अर्थार्थ इस जीवन को नीरोग और चिरंजीवी बनाने के लिए (चैव) जोर देता है। परितंणमणमोयणाए (जाडमणमोयणाए) जन्म-मरण में मुक्त होकर और दुक्खों का नाश करने के लिए अस्मिन्नेही पुरुष नाना प्रकार की साधन क्रियाएँ करती है।

आवार्थ — अर्थार्थ के पुनः प्राप्ति के लिए साधन क्रियाएँ करना अज्ञान है। जो पुरुष जानती है वे इन क्रियाओं को कर्मबन्ध नहीं करता।

समाजीन मन्वायेन आर्गमि कम्ममसांग्वा परिजाणिमन्वा भवंति ॥१२॥

अन्वयार्थ — समाजीन मन्वायेन आर्गमि कम्ममसांग्वा परिजाणिमन्वा जानने योग्य है।

आवार्थ — समाजीन मन्वायेन आर्गमि कम्ममसांग्वा परिजाणिमन्वा जानने योग्य है।

इसमें आर्गमि कम्ममसांग्वा परिगमाया भवंति में द्रुमुली परिगमायक्रमे ॥१३॥ चि चैमि ॥

ॐ प्रथम अध्ययन का दूसरा अध्याय ॥१४॥

अद्वं लोए परिजुगणे दृश्यं चोहं अविजागए अस्मि लोए पव्यहिए तत्थ तत्थ पुढो पास आउरा परितायेंति ॥१४॥
अन्यथायर्थः—(लोए) यह प्राणिपदं (अद्वं) आर्च-दुःखी है (परिजुगणे) उत्तम विधेय रहित है (दृश्यं चोहं) दुःख से मोक्ष करने योग्य है (अविजागए) अज्ञानी है (अस्मि) हम (लोए) लोक के अर्थात् पृथ्वीकाय के (पव्यहिए) पीड़ित होने पर भी (आउरा) वे आलुर जीए (तत्थ तत्थ) भिन्न भिन्न कारणों के द्वारा (पुढो) अलग अलग इत्थे (परितायेंति) परिताप देते हैं ॥१४॥

भावार्थ—चट्टानी विषयात्मक जीए अपने स्वार्थ के लिए नाना प्रकार में पृथ्वीकाय का आरम्भ समारम्भ करते हैं किन्तु विपरीत पुरुष वेदा नहीं करते हैं ॥

मंनि पाणा पुढो मिया, लज्जमाणा पुढो पास अणगारा मो सि एगे पवयमाणा जमिणं विरुवरूवेहि सत्थेहि
मंनि पाणा पुढो मिया, लज्जमाणा पुढो पास अणगारा मो सि एगे पवयमाणा जमिणं विरुवरूवेहि सत्थेहि ॥१५॥

पुद्गलिकसममसारं वगं पुद्गलिनमथं अणोवि अणोमरूवं पाणे विहिंमद ॥१५॥

अन्यथायर्थः

अनेक प्राणी (पु) अलग अलग (मिया) पृथ्वी में रहे हुए (गंति) हैं, अतः उनके आरम्भ से (लज्जमाणा) लज्जित होने वाले (पाणा) तो पुद्गलिनमथं का आरम्भ स्वयं नहीं करते हैं, दूसरों से भी नहीं करवाते हैं तथा आरम्भ करने वालों का अणोवि अणोमरूवं वगं पुद्गलिनमथं वगैरे पाणे विहिंमद ॥१५॥

❧ पहले अध्ययन का तीसरा उद्देशक ❧

— १७ —

प्रथम अ
तृतीय उ

१७

मे योग में तदा वि अगमा उज्जुकेऽ गिगामपडिवणो असायं कृत्वमाणो वियाहिए ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः (०) पृथ्वीद्वारा ये आरम्भ का त्याग करने वाला यह पुरुष (जटा वि) जिस प्रकार (अगमारे) अनगार—साधु बनता है (० १५) यह ध्यानस्थाना है (० १६) मरलता युक्त पत्रं पूर्णरूप से संयम का पालन करने वाला (गियामगडिवणो) अगमाजान करने वाला रूप माना जा प्राप्त हुआ और असायं कृत्वमाणो साया न करना हुआ पुरुष पूर्ण अनगार (वियाहिए) वह। गया है

आम मद्राण गियमंनो नमर यणुयानिया विगहिन विमोचियं ॥ २० ॥

अ. १ गार्थः (० २०) आम मद्राण गियमंनो नमर यणुयानिया विगहिन की है (विगोचियं) अर्द्धा को (वियाहिए-विजडिना) छोड़कर रही अर्द्धा न मद्राण (० २१) श्रीश्री धारण की है (विगोचियं) अर्द्धा को (वियाहिए-विजडिना) छोड़कर

मानाथ (० २२) अर्द्धा न मद्राण (० २३) श्रीश्री धारण की है (विगोचियं) अर्द्धा को (वियाहिए-विजडिना) छोड़कर

पारितोषिक का भर्ति ता २-६ ७-८ ती नहा दना आदि १६-१७ 'अन गन्ध परिणामो मे दीका सी हे उन्ही परिणामो के साथ भोजन
१८-१९ भिक्षु की पालन करना आदि २०

पल्लवा दीना नारादीनि लाग य खाणा० अभिमर्मित्वा अकृयांमयं ॥ २१ ॥

[illegible]

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को अंतिम माना जायेगा। यहाँ तक कि राज्य सरकारों को भी अपने-अपने क्षेत्र में सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान करने की अनुमति देनी होगी।

म २।५ २३ मय लोम अन्मादिकरज्जा, एव अन्तरं अन्मादिकरज्जा, त्रै लोपं अन्मादिकरज्जा मे अन्तरं अन्मा-
दिकरज्जा, त्रै अन्तरं अन्मादिकरज्जा म लोपं अन्मादिकरज्जा ॥ २३ ॥

[illegible]

भाष्यार्थः—जल, जलकाय के जीवों की सम्पत्ति है। वे नये रहे नहीं हैं किन्तु अज्ञानी जीव उनसे जबरदस्ती छीनते हैं। अतः मनुष्य जल का उपयोग करने वाले अदत्ताधान के भी दोषी बनते हैं ॥

कण्ट गो कण्ट गो पाउं अदुवा विभूसाए ॥ २७ ॥

अन्यथार्थः—अन्यतीर्थी कच्चा जल पीने हैं और उससे अपने हाथ पैर धोते हैं तथा स्नान करते हैं। यदि कोई उनसे नेमा न करने के लिए कहता है तो ये उत्तर देने हैं कि (गं) हम लोगों को (पाउं) कच्चा जल पीना (कण्ट) कल्पता है (अदुवा) अदत्ता (विभूसाए) कच्चे जल से हाथ पैर धोना, स्नान करना एवं घट्ट आदि घोना (गण्ट) कल्पता है ॥ २७ ॥

भाष्यार्थः—अन्यतीर्थियों का अवरोध करने अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है ॥

पुदो मन्थंदि विउट्टंनि ॥ २८ ॥

अन्यथार्थः—अन्यतीर्थी (पुदो) मित्र मित्र (मन्थंदि) शत्रुओं के हाथ (विउट्टंति) अल्पाय-जलकाय के जीवों की हिसा

करते हैं ॥ २८ ॥

पन्थ वि नेमि गो गिकुग्गाए ॥ २९ ॥

अन्यथार्थः—पन्थ वि हम मित्र में (नेमि) उन अन्यतीर्थियों के शास्त्र भी (गो गिकुग्गाए) निश्चय करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि ये शास्त्रपरहित आन पुण्य द्वारा मन्थे हुए नहीं हैं ॥ २९ ॥

है। (३) जो (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं (३) ये (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं।

है। (३) जो (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं (३) ये (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं। उम सून में अष्टकाय का वर्णन किया गया है और इस

दुसरे आंगे लघु पाठ का अन्वयार्थ मृच्छिन्न ३० के अनुसार है। उम सून में अष्टकाय का वर्णन किया गया है और इस

मृच्छिन्न या यक्षकाय का वर्णन है। विषय इतना ही कहें हैं। याही सारा अर्थ समान है ॥ ५३ ॥

तन्त्रं वि ज्ञान उपायमाणा त्रै आचारं न समंति, आरंभमाणा विगमं वर्णयन्ति, छंदोवर्णीया अज्जोववर्णणा

आरंभमाणा वर्णयन्ति मंगं ॥ ६० ॥

अन्वयार्थः (१) (२) तान्त्रिकाय नञा पृथ्वीद्वय आदि किसी एक काय के आरम्भ से भी प्राणी (उपायमाणा) और कार्यों के वर्णन से होने वाले पाप का वर्णन होता है। (३) जो पुरुष (आचार) आचार में (न समंति) प्रेम नहीं रखते हैं वह आरम्भ तत्त्वित पापकर्म का वर्णन होता है। इस प्रकार आरंभमाणा अज्ञान करने हैं और (अज्जोववर्णणा) नियमों में आसनक रहने का वर्णन वर्णयन्ति ॥ ६० ॥

है। (३) जो (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं (३) ये (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं। उम सून में अष्टकाय का वर्णन किया गया है और इस

तान्त्रार्थः (१) (२) तान्त्रिकाय नञा पृथ्वीद्वय आदि किसी एक काय के आरम्भ से भी प्राणी (उपायमाणा) और कार्यों के वर्णन से होने वाले पाप का वर्णन होता है। (३) जो पुरुष (आचार) आचार में (न समंति) प्रेम नहीं रखते हैं वह आरम्भ तत्त्वित पापकर्म का वर्णन होता है। इस प्रकार आरंभमाणा अज्ञान करने हैं और (अज्जोववर्णणा) नियमों में आसनक रहने का वर्णन वर्णयन्ति ॥ ६० ॥

है। (३) जो (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं (३) ये (लघु) पक्षी (क्षीरपायी) मृच्छिन्न हो जाते हैं। उम सून में अष्टकाय का वर्णन किया गया है और इस

मे वसुमे

मन्त्रमसमागाययमांगीमं अल्पानेन अकरमिज्जं पावं कर्म गो अस्मेमि, तं परिणाय मेहावी मेव

सपं सृज्जीवनिष्कायमार्थां सद्यारंभेज्जा एव अण्णिं सृज्जीवनिष्कायमार्थां सद्यारंभेज्जा, सेव अण्णे सृज्जीवनिष्कायमार्थां सद्यारंभेज्जा, असण्ण सृज्जीवनिष्कायमत्पममारंभा परिणयाया भवंति से इ सुणी परिणयायकम्मे । ६१ । नि वेमि ।

[illegible]

॥ इति प्रथममध्यखण्डम् ॥

[illegible]

[illegible]

२१ वा मः ; २१ मः पराया गियमा पठित्व परिवर्त्यन्ति, मो वा न गियमं पच्छा परिवर्ज्जना, खालं ते तत्र
२२ वा मः ; २२ मः पराया गियमा पठित्व परिवर्त्यन्ति, मो वा न गियमं पच्छा परिवर्ज्जना, खालं ते तत्र

[illegible]

जीविए इह जे पसत्ता, से हंता छत्ता भेत्ता लुं पित्ता उद्विप्ता उत्तासइत्ता, अकडं करिस्सामित्ति मएण-
माणे, जेहि वा सद्धि, मंवमइ ते वा एणं एगया शियगा तं पुब्बि पोमैत्ति, सो वा ते गियगे पच्छा पोसिज्जा, खालं ते तव
ताणाए वा सरणाए वा, तुमं वि तेमि खालं ताणाए वा सरणाए वा ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थः—(जे) जो अज्ञानी (६६) इस (आदि) जीवन में (अज्ञान) प्रमादयुक्त हैं अर्थान् भूले हुए हैं, वे प्राणियों के नाश
की क्रिया में प्रवृत्ति करने हैं, तथा (स) वे अज्ञानी जीव (६७) प्राणियों का हनन करते हैं (श्रेय) उनके अहों का छेदन करते हैं
(नाना) उनके शिर और नेत्र आदि का भक्षण करने हैं (लुपता) लोगों की गाठ काटते हैं (क्षुण्ण) इन्द्रियों का छेदन-भक्षण करते
हैं (अज्ञान) विष और शस्त्रादि का प्रयोग करके प्राणियों के प्राणों का हरण करते हैं और (उत्तासइत्ता) प्राणियों को अनेक प्रकार से
भय और आस देते हैं । (अज्ञाने) अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि (अकडं) आज तक जो कार्य किसी ने नहीं किया यह कार्य
(करिस्सामित्त) मैं करूँगा, ऐसा मानकर द्रव्य उपार्जन के लिए पापकर्म करता है किन्तु लाभान्तराय के उदय से धन न मिलने पर
अथवा प्राप्त धन का विनाश हो जाने पर (अहि सद्धि) जिनके साथ (मवय) वह नियास करता है (ते) वे (निवण) पुत्र कलत्रादि
आत्मीय जन (एगया) किसी समय (पुब्ब) पहले (त) उस पुरुष का (पोमैत्ति) पोषण करते हैं (वा) अथवा धनसम्पत्ति होने पर (वी)
यह (वत्था) पीछे या पहले किसी समय (ते) उन (शियगे) पुत्र कलत्रादि आत्मीय जनों का (पोसिज्जा) पालन पोषण करता है । ऐसे
पुरुष को लक्ष्य करके शास्त्रकार कहते हैं कि हे देवानुम्रिय ! (ते) वे पुत्र कलत्रादि आत्मीयजन (तव) तुम्हारी (ताणाए) रक्षा करने
में (वा) अथवा (सरणाए) शरण देने में (खालं) समर्थ नहीं हैं (वा) तथा (तुमं वि) तुम भी (तिमि) उनकी (ताणाए) रक्षा करने में (वा)
अथवा (सरणाए) शरण देने में (खालं) समर्थ नहीं हो ॥ ६६ ॥

उन पुत्र कलत्रादि आत्मीय जनों की (नागाण) रक्षा करने में (वा) सधवा (सहाण) शरण देने में (गालं) समर्थ नहीं हो ॥ ६५॥

भाषार्थ: समारी जीव ताता कष्ट उठा कर धन मध्य करते हैं। वे समझते हैं कि यह संप्रद किया हुआ द्रव्य भविष्य में हमारे तथा हमारे सम्बन्धियों के काम में आयेगा तथा हम धन का यथेच्छ उपभोग करेंगे और इस धन से हम अपनी रक्षा कर सकेंगे ऐसा सोच कर नाना प्रकार क कष्ट सहन करक धन का संप्रद करते हैं। वे न तो स्वयं पैठ भर खाते हैं और न अपने परिवार वालों को ही खान देते हैं। परन्तु इस तरह कष्ट पुर्यक उपार्जन किया हुआ धन भी उनकी रक्षा नहीं कर सकता। बहुत बार यह भी देखा जाता है कि भाग्य के समय में हम पुरुष का रोग आकर घेर लेते हैं और वह उस सम्बन्धित धन का भोग नहीं कर सकता। दूसरे भोग ही हम धन का उपभोग करने हैं। वह तो केवल परिश्रम और पाप का भागी होता है। इसलिये बुद्धिमान पुरुषों को धन की मृच्छा में अपने अमूल्य समय को नष्ट करना उचित नहीं है ॥

जाणिन्तु दृक्खं पत्तयं माये ॥ ६८ ॥

अन्वयार्थ: प्राणियों को (मा) मुख और (दुक्ख) दुष्ट (पत्तेव) प्रत्येक यानी अलग अलग भोगना पड़ता है। (जाणिन्तु) यह जान कर रोग आने पर हम कष्ट को समभाव पुर्यक सहन करना चाहिए।

भाषार्थ:—मसार में जितने प्राणी हैं सभी अपने किये कर्म के फलरूप सुख दुःख को अकेले ही भोगते हैं। कोई किसी के सुख दुःख का भागी नहीं होता तथा वह कर्मफल अथवा ही भोगना पड़ता है, बिना भोगे वमसे छुटकारा नहीं होता है। अतः ऐसा विचार कर विवेकी पुरुष को समभावपूर्यक हम दुःख को सहन कर लेना चाहिए ॥

अणभिकरं य खलु वयं संपेहाए ॥ ६९ ॥

अन्यथाः (अन्यथा) भूय कर (गन्तु) निश्चय ही विवेकी पुरुष आत्म कल्याण के लिए प्रयत्न करें ॥ ६३ ॥

भाषार्थः—अथ नरु दुष्टानां कीदृशनि क्षीयन्ति इतीत्य उच्यते । तत्रैव तत्तत्काले भवेत् ।
नमं ज्ञानादिपट्टिण् ॥ ७० ॥

अन्वयार्थः :- नास्त्यकार स्वर्गाणि प्राणी को लक्ष्य कर कहने हैं कि (वर्ण्य) हे पण्डित ! अथाग् आत्मनस्तत्त्वम् ! तुम् (अथ)

माणाथः व्यासं तावत् ११४ इवाम् कृत्स्नम् जन्म पाप्मां दुष्टत्वात् कीर्तयन्तां श्रेष्ठं नारायणं ।
नृणां भवति ॥ ११५ ॥ नही गंधानां किन्तु भयं भेषजं करता है नहीं पण्डितन है ।

अपसिद्धीणा, कसिमपरितणाणा अपसिद्धीणा, दृन्नेणहि विन्ध्यन्त्येहिं पण्णाणेहिं अपसिद्धयमाणेहिं आगट्ठं सम्मं समणुया-
 ज्ञाय मोक्षपरितणाणा अपसिद्धीणा, मोक्षपरितणाणा अपसिद्धीणा, धाणपरितणाणा अपसिद्धीणा, जीहपरितणाणा
 अपसिद्धीणा, अपसिद्धीणा ॥ ५१ ॥ निवेमि ॥ प्रथमोद्वेजः ॥

[illegible]

(परिसरिहोणा) स्पृशेन्निद्रय की शक्ति (अपरिहोणा) क्षीण नहीं हुई है (स्पृशेद्दे) इसी प्रकार (विल्वह्वेदि) नाना प्रकार की (परिहोणा) क्षान्तिशक्तियां (अपरिहोणा) जब तक क्षीण नहीं हुई हैं तब तक (आयुः) अपने कस्याणार्थ (सम्पन्नमणुवसिःप्राप्ति) अच्छी तरह उत्पन्न करना चाहिए ॥ ७१ ॥ (निर्मल) पूर्णधाम् ।

नोट — इस उक्ति पाठ में एक अर्थ 'परिहोणा' की जगह 'अपरिहोणा' की जगह 'अपरिहोणा' ऐसा पाठान्तर है ।

भावार्थ: इस विनाशी शरीर का कुछ भोगसा नहीं है तथा जरा (बुद्धावस्था) और रोग इसकी इन्द्रियों की शक्ति का नाश कर देते हैं । इसलिए जब तक इनके द्वारा इन्द्रियों की शक्ति नष्ट न की जाय तब तक ही मनुष्य को आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो जाना चाहिए अन्यथा अवसर प्राप्त होने पर केवल पञ्चानाप के सिवाय कुछ हाथ आने का नहीं है ।

प्रथम उद्देशक समाप्त ॥ २-१ । १ ॥

की आत्मा से विपरीत यानी स्पष्टछन्दयुद्धि से चिन्तन कराने वाले कितनेक (गुणिलो) मुनिवेगधारी (परिलेहंति) 'विषय भोग की प्राप्ति के उपायों में मयूच होते हैं (हृत्) इस प्रकार (मोह) मोह में (गुणो पुणो) पारम्पर (मण्डा) अत्यन्त आसक्त जीव' (गी इव्याण गो पारण) न इस लोक के रहने हैं और न परलोक के ही रहने हैं अर्थात् उनका इदलोक और परलोक दोनों विगड़ जाते हैं। ७३।

भावार्थः—(हताहित के विवेक में रहित कितनेक आत्मानों जीव गृहस्थाश्रम को छोड़ कर प्रव्रजित तो होते हैं किन्तु विषय-भोगों के सामने आने पर वे उनमें पंम जाते हैं। वे न इपर के रहते हैं और न अधर के अर्थात् वे न तो गृहस्थ ही कहे जा सकते हैं और न साधु ही कहे जा सकते हैं।

विमुक्ता इ ते जणा जे जणा पारगामिणो, लोभमलोभेण द्रुगंछमाणे लब्धे कामं शाभिगाहइ ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थः—(अ) जो (अणा) पुरुष (पारगामिणो) पारगामी हैं अर्थात् जिन पुरुषों ने ज्ञान दर्शन चारित्र को प्राप्त कर लिया है (ह) वे (इ) अथर्व्य ही (उणा) मुक्ति को प्राप्त करने वाले हैं। (अलोभेण) अलोमयुक्ति के द्वारा (लोभ) लोभ से (द्रुगंछमाणे) घृणा करने वाले पुरुष प्राज्ञ रूप काममोगों का सेवन नहीं करते हैं ॥ ७४ ॥

भावार्थः—क्रोध, मान, माया, और लोभ इन चारों कषायों में लोभ सब से प्रधान है। लोभ के वश हुआ प्राणी न करने योग्य कार्य भी कर देता है। इसलिए लोभादि को छोड़ कर जिसने सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र को आभीकार कर लिया है वह अथर्व्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

विद्या वि लोभं शिक्खुम्म एम अकम्मे जाणइ पासइ, पटिलेहाए गायकंउइ, एम अणुगारे ति पयुग्गइ, अहो प

करूँगा तो मेरे मनोरथ पूर्ण न होंगे । (पावमुच्छ्वलित) हम पाप से मुक्त हो जावेंगे ऐसा (मणभाले) मानते हुए कितनेक पुरुष जीव-
दिसा करते हैं (चटुका) अथवा कितनेक जीव (आसंसार) आशंसा से यानी भावी शुभ फल की आशा से एवं आगामी मय में शुभ
फल की आशा से जीवघात करते हैं ॥ ७५ ॥

भावार्थः—लोभ के बशीभूत पुरुष इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए जीवहिंसा आदि अनेकविध पापा-
घरण करता है । जो पुरुष लोभ का त्याग करके मयम अस्त्रीकार कर लेता है एवं पारित्र का विशुद्ध रूप से पालन करता है वह थोड़े
ही समय में पानीकर्मों का लय करके कैवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर लेता है ।

इस संसार में कितने ही प्राणी ऐसे हैं जो माधु के वंश को धारण करके भी इस लोक या परलोक के सुख के लोभ में पड़ जाते हैं
वे अपने ही माधु कहन की धृष्टता करत हैं किन्तु वाग्नव में वे माधु नहीं हैं । जो लोभ को जीत कर अकर्मो बनने की चेष्टा करते हैं वे
ही सत्ये माधु एव अनगार हैं ।

तं परिणाय मेहावी एव सयं एण्हि कज्जेहि दंडं समारंभिज्जा एव अएणं एण्हि कज्जेहि दंडं समारंमाविआ,
एण्हि कज्जेहि दंडं समारंभंनं वि अएणं ण ममणुजाणिज्जा, एम मग्गे आयरिण्हि पवेइए, जहेइय कुमले खोवलिपिज्जासि
॥ ७६ ॥ चिंवंमि ॥ लोगविजयस्स विउअंओ उंमो ॥

अन्वयार्थः—(मेहाका) वस्तुतत्त्व को जानने वाला बुद्धिमान पुरुष (न) उपरोक्त बातों को (परिणाय) जानकर (एण्हि) इन
उपरोक्त (कज्जेहि) कार्यों के लिए (मयं) स्वयं (एव दंडं समारंभिज्जा) प्राणियों की हिंसा न करे तथा (एण्हि) इन (कज्जेहि) कार्यों के
लिए (मएणं) दूसरे से भी (एव दंडं समारंमाविज्जा) प्राणियों की हिंसा न करावे और (एण्हि) इन (कज्जेहि) कार्यों के लिए (दंडं समारं-
माविज्जा)

ज्ञानिक) प्राप्तिगो की हिंसा करने वाले (बाली) दूसरे पुरुष की (न ममत्वाभाव) अनुमोचना भी न करे। (मायसिद्धि) आगे पुरुषों के (न) यही (मार्ग) मार्ग (योग) करमाया है। इत्यत्रिण (नृपते) पुरुष ज्ञानी युक्तिमान् पुरुष (रत्न) इत्येति हिंसा रूप दण्डात् में (मोक्षार्थक)। एतन्नि न होये ॥ ३२ ॥ (निवेदि) पूर्वम् ।

भाषार्थः— तीव्र योग की० तीन कारण से प्राप्तिगो की हिंसा का त्याग और ममत्वाभाव, दर्शन, चारित्र्य रूप भाग मार्ग आगे पुरुषों के द्वारा बड़ा मया है इत्यत्रिण यही चारण करने योग्य है। इत्यत्रिण युक्तिमान् पुरुष को चाहिये कि इस आगे मार्ग को अङ्गीकार करने चारणकभाव ॥ प्रवर्तिन करे ।

दूसरे अध्ययन का दूसरा उद्देशक सम्पूर्ण

खालें, आसन्नं विरत्नं मणिकुण्डलं मह द्विरण्येण इन्धियश्चो परिसिञ्जत तत्थेव रत्ता, ए इत्थ तथो वा दमो वा शियमो वा दिस्मइ. मंपूणं बाले जीविउकामं लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेइ ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः—(५) वह । प्रयुग्ममाले) अज्ञानी जीव । (स्वोपगत) हनोपहत होता है अर्थात् नाना प्रकार की रसाधियों से पोषित और समस्त लोक के अपमान का पात्र होता है तथा । कामाग्न दग्धुणोऽयदभाणे) यह धारधार अग्नि मरु के चक्र में घूमता रहता है । (६६) इमं अगत म । (व्यवस्थामनायमानाग) खेल, मकान आदि परिग्रह में ममता रखने वाले (एतेषु) मित्रनेक (मालबाले) मनुष्यों को (पुत्रा आकाः) असंख्यम जीवन (पुत्र) बहुत प्रिय लगता है । (७) में अज्ञानी जीव (बालां शालं) रंग विरंगे चरु (मणिबु इन्) मणिवा कानों के कुण्डल (विदग्धेण मह दग्धुणोऽयद) मंमद करके (तत्थेव) इन्हीं में (एता) आसन्न रहते हैं (वान) बाल-अज्ञानी जीव (जीवइवम) अव्ययम जीवन की रत्ता करना दृष्टा (पपूणं) प्राप्त हुए कामभीणों को भोगता दृष्टा इनमें आसन्न रहता है और (इत्थ) 'इस संसार में (तथो वा दमो वा) तप, दम-मंमम और नियमों का कुछ भी फल (न) श्रम देखा नहीं जाता है, इस प्रकार । लालप्पमाणे) कहता दृष्टा (मूढे) वह भूढ़—अज्ञानी जीव । विप्परियासमुवेइ) समस्त वधाओं को विपरीत ही देखता है ॥ ५६ ॥

भावार्थः—प्राणि ३ों को अपने कर्मों का फल अथवा भोगता पड़ता है । इस संसार में जो नाना प्रकार के दुःख भोगे जाने हैं वे सब प्राणियों के किये हुए कर्म के ही फल हैं । अतः बिदेकी पुरुष साधक कर्म का लेवन नहीं करते हैं परन्तु अज्ञानी जीव इस बात को नहीं समझते हैं इसीलिये वे पाप कर्मों का उपार्जन कर ऊँच नीच भोगा प्रकार के मोक्षों में उत्पन्न होकर संसार में परिचरमल

करने रहते हैं ॥

इसमेंच साधकवर्तन्ति, जे जगता भूचचारिणो । जाइमरणं परिणामाय, चरं मंक्रमणो दृढे ॥ १ ॥

मन्त्रिय कान्तस्ममनासमो, मन्त्र्ये पाप्मा पिपाटुया । मुहमाया दूकनपट्टिह्ला अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा,
मन्त्र्येधि जीवियं पियं, ते परिगिग्गह दूपयं चउपयं अभिजुंजिया मं मंयिचिया मं निविहेण जा वि से तत्थ मत्ता भवइ
अया वा चइया वा, मे तत्थ मट्टिदण चिट्ठइ, भोगमाण, तओ मे मग्गया विविहं परिमिट्ठं संभूयंमहोवगरणं भवइ, तं वि
मे मग्गया टायाया वा पियमंनि यटचहासो वा मे अवहरइ, सायाणो वा मे चिलुंपनि, मासइ वा से, विगस्सइ वा से,
असाहटाहण वा मे दुब्भइ, इह मे परम अट्टाण कराइं वस्माइं चले पकूवमाणे तंण दूवसेण मम्पूठं विप्परियासमुंवेइ,
सुमिण्णा इ उयं पवइयं, अमाइंनरा एण, गो य ओहं नरिचण, अतीरंगमा एण, गो य तीरं ममिचण, अपारंगमा एण, गो
य पारं ममिचण, आयागिग्गं य यायाय तस्मि टाणे न चिट्ठइ, वित्तहं पण असेयणो नस्मि टाणस्मि चिट्ठइ ॥ ८० ॥

अन्वयार्थः १) जा (४) मन्त्र्य (वचनार्थः) भूचचारिणि हैं अर्थान् मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यक्चारित्र्य का पालन
करते हैं ॥ इत महाचारित्र्य विषय दोसो की (लाभयोगी) इच्छा नहीं करते हैं । (जाइमरणं) जन्म और मरण के तत्त्व को
॥ जान कर मग्गय सेयस धी (८१) एव होकर (३२) विन्ने (कान्तमनासो मन्त्रि) काल अर्थान् मृत्यु के आने का कोई नियत
समय नहीं है ॥ ८०) मग्गय (८०) प्राप्ति की (पियाया) अरुत आयुध्य प्रिय है । (महमाया) सभी प्राणी सुप्त भोगना चाहते हैं ।
॥ ८१) मग्गय (८१) प्रतिकूल मानते हैं । (अपियवहा) सभी को वध अप्रिय है । (पियजीविणो) मनी को अपना जीवन

प्रिय होता है। (जीविज्वाला) सभी प्राणी जीवन (जाहने हैं)। (मन्त्रेभि) सब जीवों को (जीविवं) अपना जीवन (विं) प्रिय होता है।
 तथापि अज्ञानी जीव (३) असंयम जीवन को (परिगच्छन्) स्वीकार करके (इत्ये) छिपद अर्थात् दास दासी आदि नौकरों को तथा
 (अज्ञाने) स्वतुष्ट अर्थान् ईद वल आदि को (बोनिनु जिया) काम में लगाकर (तिविदेण) तीन कारण तीन योग ने (संसिक्किा) धन की
 बुद्धि करते हैं। इस प्रकार कटोर परिश्रम करने पर (अणा) अल्प (वा) अथवा (बुद्धि) बहुत (आदि) जो कुछ (से) उस धन की
 (मना) मात्रा (अथ) होती है (अन्व) उसमें यह प्राणी (गंयणान) भोग के लिए (गरिहण) अत्यन्त आसक्त (चिट्ठ) रहता है। (तन्तो)
 हमने के पक्षान् (पाना) किसी समय (००) अर्थार्थाजिन करने हुए उस पुरुष के तामान्तराप कर्म के क्षमोपश्रुत से (परिहृद) भोग
 करने से धनी हुई सम्पत्ति (विवाच) विविध एव (मदावणत्त) काफी मात्रा में (मन्वं भव) एकट्ठी हो जाती है परन्तु (से) उसकी (ते)
 उस सम्पत्ति का (अमत्त) कमी तो (अना) दायद अर्थान् पंचक स्वपत्ति के भागीदार (विभवति) घांट कर ले लेते हैं (वा) अथवा
 (से) उसकी सम्पत्ति को कभी (अदन्तपा) चोर (अदरद) चुरा लेता है (वा) अथवा (से) उसकी सम्पत्ति को कभी (रावाणी) राजा
 (विनु पान) उल्लंघन लेते हैं (वा) अथवा (ग) उसकी सम्पत्ति (अन्ध) नष्ट हो जाती है (वा) अथवा (विश्लस्य) विविध प्रकार से
 नष्ट हो जाती है (वा) अथवा (ग) उसकी सम्पत्ति (अगारदण) घर में आस लग कर (उत्तह) जल जाती है। इस प्रकार (वरस चट्ठाण)
 दूसरों के लिए (कण्ठ) कट (अमाद) कर्म (पटु-भान) करता हुआ (ग) वह (बांछे) बाल-अज्ञानी (लेण) उस पाप से उपपन्न (दुस्सेण)
 दुःख से (अमृद) मुक्त बन कर (अवधारयामुद्ध) कर्तव्य अकर्तव्य के विवेक से हीन हो जाता है। (सुल्लिण) धी वीतराग देख ने (हु)
 निधय ही (एव) यह (पाव) फलमाया है कि (एव) ये अज्ञानी जीव (अणोदत्त) संसार-सागर को पार करने वाले नहीं हैं। (५)
 और ये (सोदं) संसार सागर को (तित्तिण) पार करने में (लो) तथार्थ नहीं हैं। (००) ये अज्ञानी जीव (अनीरणा) संसार सागर के

अन्वयार्थः—(पातञ्जल) जो मनुष्य ज्ञानवान् है उसके लिए (उत्प्रेक्ष) उपदेश की आवश्यकता (अस्ति) नहीं है। (वाले) बाल-अज्ञानी (निंदे) रागद्वेष से मोहित और क्षणियों से पीड़ित (पुण) और (काममग्नतै) विषयभोगों को मनोहर मान कर उनमें आवृत्त रहने वाला पुरुष (अपस्विदुर्गं) विषयभोग और कर्मायों से उत्पन्न दुःख को शान्त नहीं करता है। इस प्रकार (दुष्क्री) सार्वत्रिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित यह (दुष्कृष्णमेव) दुःखों के (आवृत्) चक्र में ही (अणुपरिवृद्ध) सदा घूमता रहता है ॥८१॥
(मि वाम) पुण्येयम् ।

भावार्थः—जो वस्तु स्वरूप को देखने वाला है उसे पर्यक कहत है अथवा केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को जानने वाले तीर्थंकर भगवान् और उनकी आज्ञा में चलने वाले पुरुष पर्यक कहलाते हैं। इस सब के लिए उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है। वे स्वतः ही आहित से निवृत्ति और हित में प्रवृत्ति करते हैं।

भाग ॥८ में मोहित और विषयभोगों में आनक्त आज्ञाओं पुरुष शारीरिक और मानसिक दुःखों से सदा पीड़ित होता हुआ संसार-चक्र में परिभ्रमण करता रहता है : इसीलए विवेकी पुरुष को रागादि तथा विषयभोगों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥

तीसरा उद्देशक समाप्त

दूसरे अध्ययन का चतुर्थ उद्देशक

— २५९ —

तबो में लम्बा रोगग्रस्तता मरणजति, जेहि वा मद्धि संयमद ने वा मं एवया मियया बुद्धि परिवर्तति, सो वा नं मियमो पच्छा परिवर्तता, जालं नं नव नाणाए वा सरणाए वा तुमं विनिर्दिष्ट जालं वाणाए वा सरणाए वा, जगिपु दूसरे पणं मायं, सोमा ये न अणुमोयनि इहमेवेमि मागजानं ॥ ८२ ॥

अन्वयार्थः - (८२) विषयमोग में आसक्त रहने से (१) उस विषयमायक पुरुष को (एवय) कभी (रोगग्रस्तता मरणजति) रोग उत्पन्न हो जाते हैं नव (२५६) जिसके साथ (गण्य) यह रहता है (२) ये (मियया) उसके आरोगीय जन (एवय) कभी (३) पहलें ही (४) उस रोगी पुरुष की (मरणजति) अग्रहेतना एवं निश्चय करते हैं (५) तथा (६) यह भी (गच्छा) पीछे (७) उन (८) आरोगीय जनो की (९) अग्रहेतना एवं निश्चय करता है । ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि (१०) ये आरोगीय जन (११) तुम्हारे (१२) आरोगीय जनो के लिए (जालं) स्वसंयं नहीं हैं (१३) और (१४) तुम भी (१५) उनके लिए (माणाए) प्राण (१६) वा (१७) दुःख रूप (जालं) नहीं हो सकते हो । (१८) अग्रहेत माणी को (१९) अपना-संगना दुःख और (२०) सुख भागना पड़ता है तथा (२१) जान कर रोग के समय मरदाना न चाहिए । (२२) इस संसार में (२३) किमनेक (माणाए) किमनेक (२४) मरण के सिवाय उत्पन्न होने हैं कि (२५) ये भोग (२६) में होते हैं, मैंने इन लोगों को कितने परिश्रम

भावार्थः—विषयभोग दृक्स्वरूप है। उनमें आसक्त प्राणी को अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिन माता पिता स्त्री

की रोगावस्था में श्राण-शरण रूप नहीं हो सकत। इसी तरह वह मनुष्य भी द्रव्यादि द्वारा भले ही अपने गन्धु वाग्यधों को सहायता करे परन्तु उनकी शारीरिक व्याधि को तो वह भी नहीं मिटा सकता है। इसलिए रोग एवं दुःख की उत्पत्ति होने पर विद्वान् पुरुष चित्त में किसी प्रकार की उदासीनता नहीं लाते हैं। उसे वे अपने कर्म का फल जान कर समभाव और धीरता के साथ सहन कर लेते हैं।

तिविहंश जा वि मे तस्य मत्ता भवद् अष्पा वा वट्टया वा, मे तस्य गड्ढिण् चिट्ठे, भोयणाए, तस्यो से एगया पणि, गुम्मह वा म, विणम्मह वा मे, अगारटाहंश वा से डुम्भर, इह वाले परस्म श्रद्धाए करणि कम्माणि पकुवमाणे तंश दुक्खेण मूढं विण्णियाममुवह ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थः—इस संसार में कितनेक मनुष्य (निविहेण) तीन कारण तीन योग से धनोपाजन करने के लिए कठिन परिश्रम मात्रा (भवद्) होती है। तस्य उसमें वह (मायणाए) भोग के लिए (गड्ढेण) आसक्त आसक्त (चिट्ठे) रहता है। (तस्यो) इसके पश्चात् (एगया) किसी समय (से) धनोपाजन करने हुए उस पुरुष के लांघान्तरेण कर्म के शयोपशम से (तिविहं) भोग करने से बची

‘शिरसा’) गृह जान का उभरने ऊपर प्रोप नही करना चाहिये । बगवा गृहस्थ से (शेवं) पोड़ा आहार (नटु) मिलने पर (ल
'कमल' उभरने निरुद्ध न करना चाहिये । (सन्वाहवा) गृहस्थ द्वारा निषेध करने पर अर्थात् 'मेरे घर मत आओ' इस प्रकार मना
कर देने पर 'हो सं-ज' । उभ गृहस्थ के घर से लौट आय अर्थात् उसके घर में न आय । (एव) इस प्रकार (मोण) मुनि के मत
का समझ व सम-र-मः का नुस्खा करना चाहिये । न-र-म पूर्ववत् ॥ २४ ॥

भाषार्थ — बचपन में जो जीत लने वाला पुरुष मर चुका हो। यह पुरुष समय-समय पर जीत लने में काम करता है।

[illegible]

इति चतुर्थं उद्देशक समाप्त

वन्धनों को तोड़ता है (तदा) ऐसे ही (संतो) कयायादि आन्तरिक वन्धनों को भी तोड़ता है। यह (संतो) शरीर के अन्दर के (एह देशंल्लि) अविद्य पदार्थों को तथा वेद भी अविद्याओं को (यग) देखता है तथा (पुते वि) अलग-अलग (गताई) मलमूत्र सादि अपवित्र पदार्थों को पहचाने वाली इन्द्रियों को देखता है। अतः (वंशि) पण्डित पुरुष (परिज्ञान) इस शरीर के स्वरूप को समझी तरह जाने ॥ ५३ ॥

साधार्थः—तो हीच इति और संसार के स्वरूप को जानने वाला पुरुष है यह इस बात को जानता है कि संसारी प्राणी कामयोग की वृत्ति के लिए ज्ञाना प्रकार के साधन कायं करके उनका कल भोगने के लिए मया संसार पाप में भूगते रहते हैं।

ज्ञानार्थ साधनविद्यो मनुष्य भय से ही पूर्ण रूप में प्राप्त होती है, दूसरे भयों में नहीं होती है। अतः इस विषय को जान कर तो विषयों मनुष्य विषय वशार्थ का त्याग कर देता है वही पुरुष इस जगत् में यास्तनिक गीर है तथा जो पुरुष इन्द्र और भाव दोनों प्रकार के वन्धनों से स्वयं मुक्त होकर दूसरे जीवों को भी वन्धन में मुक्त होने का उपदेश करता है वही पुरुष गीर है।

इस जगत् के इन्द्रिय रूपी जीव होते हैं। उन में से अलग-अलग अपवित्र और दुर्गन्ध पदार्थ ही निकलते रहते हैं। ऐसे अपवित्र पदार्थों से पूर्ण और अन्धर इस शरीर के तत्त्व को जान कर पण्डित पुरुष इसमें राग नहीं करता है किन्तु यह शरीरादि समस्त पदार्थों से अलग त्याग कर शुद्ध संयम का पालन करता है।

य सदर्थ परमार्थ मा य इ लालं पञ्चामी, मा तेमु तिरिच्छमप्यागमायाण, कासंसे गलु अयं पुरिसे, चहुमाई कटेल मूद, पुणो नं कंरु लोहं वंरं वड्ढेइ अप्पणो, जमिणं परिकट्टिज्जइ इमस्स चेव पडिबुहंगाए, अमरायइ महासड्ढी अइधमं तु वेहाए अपमिगगाण कंरुइ ॥ ६४ ॥



एक कला शास्त्र : इन कलाओं से दिया जाती है तथा जिस कार्य का आचरण जानियों ने निविद यत्सारा ई उमहा कयापि आन-

एक न कल :

उदंगी पापरासम मन्त्रि, वने पुल्लिङ्गे कामगमगुणं
अमपिमदुम्बे दुम्बी दुन्मागसेय आनन्दं अणुपरिगृह
॥ १०४ ॥ निर्वयि ॥

[illegible][illegible]

समाप्त है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में नैतिक शिक्षा देना आवश्यक है।

॥ इति लोकरिजय नामक द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

लोमंमि तान् अद्विषाम, दूकर्म, ममत्वं लोमम् आगिना, इत्य तत्त्वोत्तरम्, जसिमे सदा य रुखा य १०३३ य १०३४

य तामा य यविमममगायया मयंनि ॥ १०६ ॥

यन्त्रयाथः (कवयः) छ काग के शीयों में परिपूर्ण इस लोक में (दुःखों) अछान ही (अद्विषाम) अहित के लिए है यह (नाण) जाना । (ममत्वं) लोम के (मम) आचार को या ममता को (आगिना) जालकर किसी भी प्राणी की मार न करे । (इत्य) इत्य छः काय के लोम में (रुखा) मम का प्रयोग न करने हुए भयं तामरणा का आश्रय लेना चाहिए । (इमे) ये (यत्) शुभ्र (स्या) रूप (रगा) रस (१०३३) ममत्वं यत् (योर) १०३४ जिस पुरुष को (यविमममगायया) पूर्ण रूप में प्राप्त (भयंनि) हो जाले है यही पुरुष लोम का जानने वाला है । १०६ ॥

मायार्थः छ काय में शीयों में परिपूर्ण इस लोक में अछान ही दुःख का कारण है । इसी से प्राणी दुःख लोक और परलोक में लोमत्वं के लोमों को प्राप्त होता है । इसलिये अछान में वन्मुक्तन के लिए प्रयत्न करना चाहिए । अछान के यशीभूत होकर जीव आगिना में दूकर्म करता है तथा लोम पर यथाचल करता है उसका फल योगने के लिए नरकादि मनियों में जाना है । आर्यश्रेष्ठ, मनुजमध्यम आदि का मिलना चका बटित है । इस प्राप्त कर अछान के नाश के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

अज्ञानी जीव मलोक्ष रूप अज्ञानि म राग और असतोक्ष में द्वेष करने हैं किन्तु मित्रों की पुरुष दोनों में समभाग रहने हैं कर्त्तव्यि राग-द्वेष बर्त्तक-यत्न का प्रयत्न है ॥

य आर्यं मायार्थं नेयं भस्मत्वं बंभवं पगमामोहि परिगामद् लोमं, सुगीनि यन्त्रे, भस्मविच्छिन्नि अंज आचक्षुसोप

अन्वयार्थः—(ते) यह पुण्य (आयव) आत्मयान है (आयव) ज्ञानवान् है (विवर्ध) वेद अर्थात् आचारांगति सूत्रों को जानने वाला है धर्मज्ञ है (बन्ध) प्रत्यक्ष है । यह (पञ्चालेदि) मति आदि ज्ञानों के द्वारा (लोक) लोक को (परिपालय) जानता है, यही (मूल) मुनि (बन्ध) कहलाने के योग्य है । (यमाविक्रान्त) यह धर्मवेत्ता है (बन्ध) मरता है । यह (आवृत्त्या संगं) संसार रूप आवृत्ति और यान क त्याग है (आत्मजगत्) जानता है ॥ १०७ ॥

भावार्थः—जो आत्मयान ज्ञानवान् आदि उपयोग विशेषणों वाला मुनि है यह संसार के मूल कारण रागद्वेष को जान कर उन्हे छोड़ देता है । अतः बान्धव म बन्ध विद्वान् और धर्मज्ञ है ॥

मीउसिण्ण्यार्थः से शिगोथ अरइइमं, फलमयं को वण्ड, जागरंरोवरण, वीरे एवं दुक्ख पमुक्खमि, जसमञ्जु-वसोवणीण मार सययं मूढे धम्मं खाभिजाणुइ ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थः—(आवृत्त्या संगं) संसार को त्यागने वाला यानी दीप्त और उष्ण के कष्ट को सहन करने वाला (अतएव) असंयम में अस्ति और संयम में रति रखने वाला (ध) यह (लिंगे) निर्द्वन्द्व (कल्पय) परीपह और उपसर्गों को पीदा-काली (लो रेइ) नहीं समझता है । (आण) यह पुण्य असंयम जीवन रूप भाषनिद्रा को त्याग कर सदा जागृत रहता है । (वेद-वण) यह नेत्रभाव से सदा निवृत्त रहता है । (एव) इत तरह (लोरे) वीर पुण्य (सुक्ख) मुखों से (सुसज्जि) छूट जाता है । (जसम-जुवणीवणी) जरा और मृत्यु के यश में जाने वाला (लो) पुण्य (सर्व) सदा (गदे) मृदु है । यह (अयं) धर्म को (खाभिजाण्ड) नहीं जानता है ॥ १०८ ॥

भाषार्थः— त्रिमते आध्यान्तर और बाह्य दोनों प्रकार की स्थितियों को तोड़ दिया है। ऐसा निम्नस्थ न तो सांसारिक सुख को इच्छा करता है और न दुःखों से चपराता है। किन्तु यह अनुकूल और प्रतिकूल सब परीक्षाओं को समभाव पूर्वक सहन करता है। ऐसा हीर पुरुष भगवन्निद्रा का त्याग कर मगध में निरन्तर रत रहता है। यह ममस्त दुःखों में दूट जाता है ॥

यामिय आउरे पागे अप्पमत्तो परिच्यन्, मंता एयं मडमं पाम आरंभंजं दुस्समिणं चि गच्छा, माई पमाई पुण्ण एड गच्छं, उवहमागो महस्संमु अंज मारगिभनंकी सरणा पमुच्छह, अप्पमत्तो कामेहिं, उवरओ पावकम्महिं, वीरे आय-गुत्ते जे सेवगणे, जे पज्जवजायमन्थस्स सेवगणे, जे अमन्थस्स सेवगणे, जे पज्जवजायमन्थस्स सेवगणे, अकम्मस्स ववहागे ण विज्जह, कम्मणा उवाही जायह, कम्मं य पडिलेहाए ॥ १०६ ॥

अन्यार्थः— भाग्य से जागता हुआ पुरुष (आत्मा) आतुर अर्थात् शारीरिक और मानसिक दुःख गले हुए (गले) प्राणियों का (आत्मा) देख कर (अपमान) प्रसाद रहित मन कर (आत्मा) संयम का अनुष्ठान करे। शास्त्रकार कहते हैं कि (गले) दे मति-मन (आत्मा) भाग्य से मोये हुए जीवों की दुर्दशा को देखो। (एवं) यह (मंता) मान कर भाग्य से मोने का निवार मत करो। (इति) यह जो प्राणियों में जाना प्रकार का (दशा) दुःख देखता जाना है यह (आरंभजं) आरम्भ जनित है (इ) एवमा (गला) समझ कर, आरम्भ रहित मनन का प्रयत्न करो। (माई) मायावी और (पमाई) प्रमादी पुरुष (पुण्ण) प्रमादी भगवान् को (एड) प्राप्त होता है। (मच्छा) शब्द और रूपान्ति विषयों में (अंज) वास्तव में सरल है तथा (मारगिभकी) मृत्यु से शंका रहने वाला पुरुष एवमा प्रयत्न करता है, कि (पुच्छह) यह मृत्यु से ही दूट जाता है। (कमेहि) जो

अन्यथाऽर्थः—(जं) जो (कर्मफल) कर्म का मूल कारण है उसे (यं) और (फलं) हिंसा को (अभिलेखित्य) जान कर त्याग देये। (मर्त्य) पुर्णित स्वमदन उपदेतो को (गमायण) प्रणम करके (अंगेहि) राग और क्रोध (क्षीदि) मोनों के साथ (अदिरामणो) दिखाई न देना हुआ अधोग राग क्रोध में लिप्त न होना हुआ (महात्मा) युक्तिमान् पुरुष (मं) कर्म और रामोत्तर को (परिणाम्य) त्याग कर तथा (मोर्गं) रामोत्तर में कर्म हुए लोक को (निरता) जान कर मर्त्य (लोपणम्) लोक संज्ञा को अर्थात् नियमभोग तथा कर्मायों को (बला) छोड़ कर (परकर्मिन्तराया) संयम का अनुष्ठान करे। (अभिलेख) संस्था में कहना है ॥ ११० ॥

नोट — "कर्मफलं यं न दृग्ग अभिलेखित्य" के स्थान पर "कर्मफलं यं न दृग्ग ज्ञातं" भी देना जाता है। श्रिगच्छ को इस प्रकार है—
(जं) जिस (फल) फल में (कर्म) कर्मोपदेह हो उसी क्षण में (याह्य) उसकी नियुक्ति करनी चाहिये अर्थात् समान और समान-
यथा जिस क्षण में कर्मोपदेहनकारक कार्य हो जाये उसी क्षण में त्यागभजन होकर कर्म के कारणों की नियुक्ति कर देनी चाहिये।

भाषार्थः—(सम्यग्ग, आगिरति, प्रसाद, कर्माय और योग ये कर्म के मूल कारण हैं। इन्हें जान कर नियेकी पुरुष इनका त्याग कर मर्त्य और शूद्र समस्त क अनुष्ठान में प्रयत्न करे ॥

॥ इति शीतोष्णीय अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

प्राण के स्वप्नान्तर करने वाले हिंस्रप्राणि प्राणी को (उपमंय) स्वप्नान्तर में जीवन्त स्वरूपिण करना है यह (उपमंय) स्वप्नान्तर में अर्थान्तर प्राणिक और मानसिक रूपों का भागी होना है । (कामेय) काममोक्षों में (मित्र) मित्रजीव (मित्र) कामों का स्वप्नान्तर करने है । इत्यन्तर (मित्र) कामों के रक्षण से भावि यंत्रों द्वारा प्राणी (पुण्य) प्राण २ (मित्र) स्वप्नान्तर को (हृत्) प्राप्त होने है ॥ २ ॥

अर्थान्तरः काममोक्षों में अर्थान्तर करने हुए जीव हिंस्र प्राणि माना प्रकार का प्राणान्तरण करने है जिसमें प्राणान्तर गर्भप्राण को प्राप्त होना है जो मानसिक और मानसिक रूपों से दुःखित होने रहने है । अतः नृदिमान्तर प्राणी को विनयमोक्षों में अर्थान्तर न होने चाहिये ॥

अपि मे हामयामन्त्र, हंता मंदीनि समर्पे । अने वालम्ब मर्षिण, नरे गुरुद्वे अप्रमो ॥ ३ ॥

अर्थान्तरः (१) यह विषय भी (हामयामन्त्र) हामय के हित (हंता अर्थ) जीवों को मार कर भी (मंदीनि) इसे एक कीड़ा (मन्त्र) मानना है । मर्याद में यह अस्मान्तर भी प्राणियों के साथ स्वयं ही (अपि) अन्तर (यदि) मर (यदि) मरना है । अतः (मन्त्र) मर मर अस्मान्तर भी (मन्त्र) मर न करना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्थान्तरः गुरु मे हामयामन्त्र भी अस्मान्तर कीदर्थ मर्ष मन्त्रमोक्षार्थ जीवों को हिंस्र करने है । ये अस्मान्तर स्वयं ही अस्मान्तरों का मान अर्थान्तर में मरना चाहिये । अतः विषयों प्राणों को ऐसा कदापि न करना चाहिये ।

नरदा अक्षयिजो परमंनि मन्त्रा, आपंकदंभी ग कंद पावे ।

अमं ग मुनं ग विमिच धीरे, पलिच्छ्रिद्या गं मित्रकर्मदंभी ॥ ४ ॥

भावाथः—पराशरजी मगनु पुरुष अपनी दुष्टियों को पश में रमता हुआ पुरुष संयम का पालन करता है और ज्ञान आदि से युक्त रहता है। अतः पुरुष मनुमान तत् पूर्वोक्त गुणों का पालन करता रहता है और मनुमान का पालन करना चाहने पर वह परित्याग कर देता है। अतः भिक्वों पुरुष को पूर्वोक्त गुणों में युक्त होकर मरण पर्यन्त संयम का पालन करना चाहिये। अतः पुरुष परित्याग कर देता है। अतः मरण पर्यन्त संयमपालन की आवश्यकता है।

मन्त्रार्थः भिक्व कृच्छ्रा, प-यावरण महावी मज्जं पावं भोगेह ॥ ११२ ॥

अन्वयार्थः शस्त्रधार न कर दे कि. प. प्राणियों (पशुओं) मध्य यानी संयम में (विद) भीरता (कृच्छ्रा) मन्त्रो (पशुपालन)

इस मन्त्र में स्थित (विद) प. मूर्तिमान पुरुष (पशु) ममस्व (पशु) पाप (कर्म) कर्मों को (गोपेह) छुप कर लेता है ॥ ११२ ॥

भावाथः—पशु पालन करने वाला पुरुष ममस्व कर्मों का धन कर लेता है ॥

यममन्त्रिने खलु अयं पुरिमे, मे कंयगां अरिहृद पुरहृत्तप, मे अरण्यसिमावाण अरण्यपरिमहाण

जगत्पयवहाण जगत्पयसिमावाण जगत्पयपरिमहाण ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थः—(पशु) निधाय है (पशु) यह (पशु) पुरुष (अरण्यसिमा) अनेक चित्त वाला होता है। (मे) यह (कंयगां) केनन

अर्थात् अपनी लोभोच्छ्रया पशु मनुष्या को (पशुपण) पुरा करने का (अरिहृद) प्रयत्न करता है। (मे) उस ही यह पुरुषा (मण्यपहाण) दूसरे प्राणियों के पशु के लिए (अरण्यसिमावाण) उनको पशुनाश अर्थात् प्राणीरिक और मानसिक कष्ट देने के लिए और (अण्य-

अथर्वण पुष्टिं न भवति एव, किमप्य नीयं किं वाऽऽगमिस्मि ।
भारति एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ॥ १ ॥

अन्वयाथः—(१) मागवाओ, एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
नरते ॥ (२) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
इमं सस्मर ॥ (३) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
और नपुंसकस्य आदि (४) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।

भाषाथः—(१) मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
नरते ॥ (२) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
इमं सस्मर ॥ (३) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
और नपुंसकस्य आदि (४) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।

माईमगदं न य आगमिस्मं, अद्रुं मियच्छंति तद्भाग्या उ ।
विद्वयकं पयागुपस्वी, मिज्जोमदना सुवण तपस्वी ॥ २ ॥ ११७ ॥

अन्वयाथः—(१) मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
नरते ॥ (२) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
इमं सस्मर ॥ (३) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।
और नपुंसकस्य आदि (४) एवै ह मागवाओ, जसस् नीयं तमाऽऽगमिस्मि ।

से वंता कोहं य मागं य मायं य लोभं य, एवं पामगस्म दंगणं, उवरयमन्यस्म पलियंतकरस्म, आयगणं मगडन्मि ।

अन्यथायः— जो पुरुष शास्त्रोक्त मीनि में संगम का अनुष्ठान करता है (६) वह (गोहं) कोय (माणं) मान (मायं) माया

(५) और (लोभं) लोभ को (वन्ता) जीव ही नष्ट कर देता है (५) वह (दंगणं) उपदेश (उवरयमन्यस्म) शस्त्र से निवृत्त और (पलियंतकरस्म) कामें पच स्वरूप का अन्त करने वाले (पामगस्म) संयत तीर्थंकरों का है (आयगणं) आदित् अर्थान् हिंसा आदि आत्मवै का त्याग करने वाला पुरुष (मगडन्मि) अपने कर्मों का नाश कर देता है ॥ १०४ ॥

भावार्थः— जो पुरुष शास्त्रशास्त्रादि संहित होकर राज्य का पालन करता है वह कोय मान माया लोभ का सब करके एगं गणं का जगद कर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। ऐसा केवलज्ञान केवलदर्शन के भारक तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर भगवी ने कहा है ॥

जे एगं जगद मे मन्वं जगद, जे मन्वं जगद मे एगं जगद ॥ १०५ ॥

अन्यथायः— जो (१) परमाणु आदि द्रव्यों में से किसी एक को (जगद) जानता है (२) वह (मन्वं) न्यंसार के समस्त पदार्थों को (जगद) जानता है (३) जो (एगं) संसार के समस्त पदार्थों को (जगद) जानता है (४) जो (एगं) एक पदार्थ



से ॥ लब्धयः पश्यन्तः विरक्त हो जाय । (लोभसेमलं) लोकैषणा (लोभ) न करे ॥ १२७ ॥

भाषार्थः—सम्यग दर्शन को प्राप्त करके उसके अनुकूल कार्य न करना उस सम्पगदर्शन को छिपाना है अतः विवेकी पुरुष जेना न कर तथा मिथ्यादर्शियों के समर्थ से उसका त्याग भी न करे । वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जान कर मनोस और अमनोस शास्त्रादि विषयों में रागद्वेष न करे किन्तु समस्त पदार्थों में समभाव रहे ।

अस्म गन्थि इषा एहि, अएणा तम्म कथो मिया ? दिट्ठं सुयं मायं विएणायं जं एयं परिकटिज्जइ, ममेमाणा पल्लमाणा पुणो पुणो जाहे एकप्पोनि ॥ १२८ ॥

अन्यथार्थः (कम्म) जिन मोक्षार्थी पुरुष की (इमा) यह पूर्वोक्त लोकैषणा (एहि) कति-युद्धि (गन्धि) नहीं है (तम्) उसकी (अएणा) दूसरी सावध आग्रह में प्रवृत्ति (कथा) कैसे (मिया) हो सकती है ? (एव) यह (ज) ज्ञा (परिकटिज्जइ) मेरे द्वारा कहा जा रहा है यह (इड्ठं) सर्वज्ञ के द्वारा देखा गया है और (यव) अवलम्बितों द्वारा सुना गया है तथा (मव) भय जीवों द्वारा मनन किया गया है और (विगगाय) विज्ञेय रूप से जाना गया है । (ममेमाणा) ज्ञा पुरुष मनुष्य आदि जन्मों में अग्र्यस्त आसक्त हैं और (पल्लमाणा) मनोस इन्द्रियसुख में तल्लीन हो गये हैं ये (पुणो पुणो) बारबार (आहि) एकट्ठिव आदि ज्ञाति को (एकण्ठि) प्राप्त करते हैं ॥ १२८ ॥

भाषार्थः—मनोस विषयों में राग और अमनोस में द्वेष करना लोकैषणा कहलाती है । इस लोकैषणा के द्वारा जीव मोहित हो रहे हैं और इसी से प्रेरित होकर प्राणी नाना प्रकार के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं किन्तु जिन ज्ञानी मोक्षार्थी पुरुष ने इस लोकैषणा को संसारश्चमल का कारण जान कर त्याग दिया है उसकी सावधि सबंधी नहीं होती है ।

(आवाशिम्बे) आदेय यानी ग्रहण करने योग्य वचन वाला (विधिए) कहा गया है और (जे) जो (बंभवेरसि) ग्रहण्यर्थ में (वसिना) निवास करता हुआ (समुत्तर्ध) शरीर को (पुणश्) कृणु कर डालता है, यह पुरुष ग्राह्य वचन वाला होता है ॥ १३७ ॥

भावार्थ:—धन धान्य तथा कलत्रादि के पूर्व संयोग को एव असंयम को त्याग कर और संयम को स्वीकार करके नवदीक्षित मुनि पहले तपस्या द्वारा शरीर को भोड़ा पीड़ित करे, फिर विशेष पीड़ित करे और अन्तिम समय में शरीर को त्यागने की इच्छा करता हुआ साधु मासक्षण और अर्द्धमासक्षण आदि क द्वारा शरीर को निश्चय हो पीड़ित करे । मौमरिक भोग विलासों से तथा आरति से समय को हटा कर कर्मों का विनाश करने में समर्थ होकर शरीर वन और जीवन पर्यन्त शुद्ध संयम के पालन में रत रहे तथा ब्रह्मचर्य व्रत में सम्यक् निवास करता हुआ तपस्वी मुनि अपने शरीर और कर्मों को कृश करे ॥

एतच्छिष्टं पल्लिच्छ्येणं हि आयाणमोगमदिए बाले, अज्जोच्छिद्येणवंधये अणभिककंतसंजोए तमंसि अविषाणयो आयाण लंभो सुन्धि चि त्थेम ॥ १३८ ॥

अन्वयार्थ:—(बाल) असती जीव (मग) ६। नेत्र आदि इन्द्रियों को (पल्लिच्छ्येणं) अपने अपने विषयों से रोक कर भी (आयाणलोयकण) पिर विषयभोग में आलस्य हो जाता है । (अज्जोच्छिद्येण वंधये) यह कर्मवन्धन का छेदन नहीं कर सकता है तथा (अणभिककतमजोए) स्वयंको का उल्लघन भी नहीं कर सकता है । (तमंसि) मोह रूपी अन्धकार में पड़े हुए और (अविषाणयो) कदमण के मार्ग को न जानने वाले उन्मत्त पुरुष को (आयाण) तीर्थकर भगवान् की आज्ञा का (लंभो) लाभ (णन्धि) नहीं होता है (निधेमि) यह मैं कहता हूँ ॥ १३८ ॥

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...

... (illegible) ...



मन का न जान दे । स्त्रीभोग में आसक्ति होने से पुनः पहले तो (दंग) दण्ड प्राप्त होता है और (पच्चा) पीछे (काया) नर-
काय की पीड़ाओं भोगनी पड़ती है अथवा (पुनः) पहले (पामा) स्त्री स्पर्श होता है और (पच्चा) पीछे (दंग) दण्ड भोगना पड़ता
है (१२१) इस प्रकार ये स्त्री सम्बन्ध (वन्धन-सम्बन्ध) कलह के कारण अथवा रागद्वेष को बढ़ाने वाले (भ्रंश) होते हैं । अतः
स्त्री सम्बन्ध का पृथक् छनणों का कारण समझ कर एव (आगमिना) आन कर (अणुसिन्धुए) सेवन न करने की (आण-
काया) काया न करने में कहता है । (वि) यह साधु (लो कसिए) स्त्री कथा न करने (लो कसिए) राग-
पूषण उनका एक प्रयत्न का न करने (लो कसिए) उन पर ममत्त्व न करे (लो कसिए) उनकी वैवायव्य न करे (वशुने) वचन
में गान न भरण (स्वयों के साथ विशेष आलापसंवाप न करे (कामकम्बुदे) स्त्रीभोगों में चिन्त न दे । (वका) सदा (वाच) वाप को
वशुने यज्ञित करे (एव) एव प्रकार (कोल) मुनिमत का (ममपुसिन्धुसिन्धु) पालन करे (नि वेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १५६ ॥

भाषार्थः—कर्मों के विपाक को देखने वाला, संसार के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला, उपशान्त, सविधि युक्त, सानादि
गुणा लक्षित और तब काय जीवों का एकक मुनि शीघ्र ही कर्मों का अन्त कर देता है, ऐसे मुनि पर यदि स्त्री आदि के परोपद आये
तो भी वह अपने संयम से विफलित न होने किन्तु संयम में रह रहे । इस प्रकार संयम में विवरण करते हुए साधु की इन्द्रियों यदि उसे
बोधित करें तो साधु निःसार एव अन्तर्धान आहार करे । इससे भी यदि शान्ति न हो तो आतापना आदि लेकर शरीर को कष्ट दे ।
इतने पर भी यदि इन्द्रियों शान्त न हो तो उस गाँव को छोड़ कर अन्यत्र बिहार कर जाय । जब किसी प्रकार भी भिषय की शान्ति न
हो तो साधु आहार घटाय कर ले ले । इस प्रकार न जाने शरीर का बिनाश भी हो जाय तो आसक्ति दे किन्तु साधु भिषयसेवन

मालम एए रोगा, भक्खाया अणुपुण्यसो । अहं पुंगंति आयंका, फासा प अममंजसा ॥

मराजं नमि गंपेहाए उदवायं चवणं य खुब्बा परियागं य संपेहाए ॥ १७२—१७६ ॥

अन्वयापः—(अणुपुण्यसो) स्वर्ग और मोक्ष तथा उनके कारणों को एवं संसार और उसके कारणों को जानने वाला (सो) वह (लो) मनुष्य (स) इस मनुष्य लोक में (मालेय) मनुष्यों के प्रति (आकाश) धर्म का उपदेश करता है । (अस) जिस मनुष्य को (अस) ये (आकाश) एदेन्द्रिय आदि अस्तिवा (अस्यो) सब प्रकार से (मुक्तिदिव्यो) अच्छी तरह ज्ञान (अर्थ) होती है (सि) वह (अस्य) अणुपम (लाल) ज्ञान एवं धर्म का (आकाश) कथन करता है । (अमुदिवान्) धर्मोत्तरण करने के लिए तापर (लिखित-रत्न) प्राप्तिवो को एएड देने का त्याग किये हुए (अमदिवान्) तब और संयम में मनुष्य और (अणुपुण्यसो) उसम ज्ञान सम्यग् (असि) उन पुण्यों का (सि) वे तीर्थश्रुत का अणुपर आदि (मुक्तिमार्ग) मुक्तिमार्ग का (असि) उपदेश करते हैं । (एवं) इस प्रकार तीर्थश्रुत आदि के उपदेश का सुख कर (असि) कोई (आपेता) महान् वीर पुण्य (असि) इस लोक में (असि) कामें करी शत्रुओं पर पराक्रम करते हैं । (अस्येय्यो) संयम में कथेन जाने हुए (अणुपुण्यसो) आत्मकल्याण की वृद्धि से रहित (असि) किन्हीं पुण्यों को (असि) देखो । वे संयम के अनुष्ठान से जिस कारण से क्लेश जाने हैं (सि) उसे (असि) में बताता हूँ । (असि) जैसे (अणुपुण्यसो) काम के वस्तु से वीर हुए (असि) लालाह में (असि) रहित । अने विषय को लगाया हुआ (असि) कलुषा (सि) उसके (असि) ऊपर जाने के लिए विषय को (असि) प्राप्त नहीं करता है तथा (असि) जैसे मूल (असि) अपने स्थान को (सि) नहीं छोड़ते हैं (असि) एही तरह (असि) कोई पुण्य (असि) करने का प्रकार के (असि) फलों में (असि) करने में अर्पण विषयों में (असि)

100

100

आप हय दश, जे सल्लिहाणमत्थस्म खेयणणे से भिक्खु कालणणे पलणणे मायणणे खुणणणे विणयणणे समयणणे पारगाह मममायमाण कालण उद्धारि म्पदिणणे दुहम्मो द्विचा खियाद ॥ २०६ ॥

भा०-वयाप्य

१. वयस्य की वलमान वाल शास्त्र के ज्ञान में (गवण्णे) निपुण है (३) वह (काळण्णे) अयसर को जानने वाला (वलण्णे) वल को जानने वाला २. ममा याना पणमाण को जानने वाला (काळण्णे) लण को जानने वाला (विणयण्णे) विनय को जानने वाला ३. म्पदिण्ण को जानने वाला है, वह (१०६) परिमह पर (मममायण्णे) मममथ न करता हुआ (काळण्णे) काल से (उद्धारि) उठने वाला ४. लण पल्लिका रहित पाता किसी भी प्रकार के नियाण्णे से रहित (दुक्खो) बाम और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के बन्धनों की ५. उद्धारि वरर (१०६) स्वयम माग में गमन करता है ॥ २०६ ॥

भा०वार्थ:- वयस्य के अर्थ स्वरूप को जानने वाला रागद्वेष रहित पुरुष सब अवस्थाओं में प्राणियों पर दया ही करता है । काल पारमाण, लण विनय और समय याना आगम को जानने वाला वह पुरुष किसी भी वशार्थ पर ममत्व भाव न रखता हुआ ममम माग में भलीभांति विचरता है ।

ते भिक्खु सीयससपरिवभाषणायं उवमंकमिचा गाहावर्हि पूया-आउसंतो समणा ! खो खलु ते गाममग्ग्मा उप्पावन्ति ! आउमंतो गाहावर्हि ! खो खलु मम गाममग्ग्मा उप्पावन्ति, सीयकासं य खो खलु भदं संचाएमि अदियासि-णए, खो खलु ये कप्पर अगणिकायं उग्गालिणए या पग्गालिणए वा कार्यं आपाविणए वा कपाविणए वा अपकेसि

‘नाथ का सेवन करना मुझे नहीं कल्पता है (निष्पत्ति) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २०७ ॥

भाषार्थः—शीतकाल में गर्मी के कारण यदि किसी मुनि का शरीर काँप रहा हो तो उसे देल कर यदि कोई गृहस्थ मुनि से यह पूछे कि हे मुनि ! आपका शरीर क्यों काँप रहा है ? क्या आपको बिषय तो नहीं सता रहा है ? तो मुनि व्रत गृहस्थ को स्पष्ट उत्तर दे कि हे देवानुग्रिय ! मुझे बिषय नहीं सता रहा है किन्तु ठण्ड से मेरा शरीर काँप रहा है । मुनि के इन वचनों को सुन कर यदि वह गृहस्थ अग्नि जला कर साधु के शरीर को ताप देना चाहे तो मुनि उससे बदे कि हे देवानुग्रिय ! स्वयं अग्नि को प्रज्वलित करना और उसके द्वारा शरीर को ताप देना मुझे नहीं कल्पता है इसी प्रकार दूसरों में अग्नि प्रज्वलित कराना भी मुझे नहीं कल्पता है क्योंकि अग्निसेवन करना हम साधुओं के आचार के विरुद्ध है । इसलिए मैं अग्नि सेवन नहीं कर सकता हूँ ॥

॥ इति आठवें अध्ययन का तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

प पाव हराव में भक्त प्रार्थना का कथन किया गया है । इस छोटे उद्देशक में इगित-भरण का कथन किया जाता है:—
 जे भिक्षु पंगेण वन्थेण परिचुमिण पायविईएण, तस्स रणे णो एवं भवद् विइयं वत्थं जाइस्सामि, से अहेसखिज्जे
 वन्थ जाइज्जा अदापरिगुणं वन्थं धारिज्जा जाव गिम्हे पडिक्खणे अदापरिगुणं वत्थं परिट्ठविज्जा, परिट्ठविचा अदुवा
 अचंले लापविं आगममाणे जाव सम्मत्तमं व समभिजाखिया ॥ २१५ ॥

अन्वयार्थ:—(जे) जो (भिक्षु) साधु (पंगेण) एक (क्येण) वस्त्र धार (पायविईएण) दूसरा पात्र इनके साथ (परिचुमिण) रहता
 है (वत्थं) उसको (व) ऐसा विचार (णो) भवद् नहीं होगा है कि मैं (विच) दूसरे (वत्थं) वस्त्र की (जाइस्सामि) याचना करूँगा ।
 मे। नट (अदपरिगुणं) उपाय के अनुसार (क्य) वस्त्र की (जाइस्सामि) याचना करे और (अदापरिगुणं) जैसा वस्त्र प्रदत्त किया गया
 है अर्थात् मिल गया है वैसा ही (धारिज्जा) धारण करे (जाव) यावत् जब वह देखे कि शीन अतु चली गई है और (गिम्हे) प्रीप्स
 अतु (ग-कण्ठ) आगाई है तब वह (अदापरिगुणं) जीर्ण (वत्थ) वस्त्रों को (परिट्ठविज्जा) त्याग देवे । (अदुवा) अथवा (एगसाणे) वह क्रमशः
 एक वस्त्र धार (अदुवा) तथा (अवेले) वस्त्र रटित होकर (लापविं) अपने आप को लपु (आगममाणे) पनाता हुआ (जाव) यावत्
 (सम्मत्तमं) समवकाय को (समभिजाखिणं) धारण करे ॥ २१५ ॥

भाषार्थ:—जिस साधु का वह नियम है कि—एक वस्त्र धार और एक पात्र को धारण करते रहना—

साधयिषं यागममाणं, तवं मे अभिममणागणं भवइ । जेहयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चया सव्वद्यो सव्वत्ताए
मम्मममक ममभिजाणिया ॥ २१७ ॥

अन्यपर्यः—

(४) यह (अथ) साधु (वा) ब्रधया (भिक्षुण्णे) साध्वी (असणे) अग्रज (गणं) पानी (खारमं) खादिम (कारमं)
हनु यानी दादु म (दण्डण) दल्लिण यानी दाहिनी (दणुय) दादु की ओर (णो संचारिजा) संचारित न करे । तथा (आवाण्णाले) स्वाद
लेने के लिए (दण्डणाल्हा) दाहिनी (दणुथाको) दादु से (वास) बाईं (दणुयं) दादु की तरफ (णो संचारिजा) सञ्चारित न करे । इस प्रकार
लेकर साधु (अण्णमावणाले) स्वाद न लेता हुआ खाहार करे । (लापविच) अपने कर्मों को लघु (आणमणाले) बनाता हुआ स्वाद न
(एव) यह (अण्णका) भगवान् ने (पवेइय) करमाया है (तमेव) उसी को (अभिसमिका) यथार्थ जान कर (सव्वद्यो) सब प्रकार से और
(मममम) सर्वोन्म भाव से (मम्ममेव) समभाव का ही (ममभिजाणिया-अभिजाणिया) पालन करे ॥ २१७ ॥

साधार्थः—

साधु या साध्वी खाहार करते समय स्वाद लेने के लिए खाहार को बाईं पाद से दाहिनी पाद की ओर तथा
दाहिनी पाद से बाईं पाद की ओर सञ्चारित न करे किन्तु गृदिभाव रहित होकर खाहार करे । इस प्रकार गृदिभाव रहित खाहार
करने से उसे तप को प्राप्ति होती है और कर्मों का अग्न होकर लघुपना प्राप्त होता है । ऐसा साधु सर्वत्र सब प्रकार से साममान रखता
हुआ विचरे ॥

पृच्छेणं थाहारं संबद्धिज्जा, संबद्धश्चा क्रमाए पयणुए किञ्चा समादियज्जे फलगावयद्वी उट्ठाए भिक्खु अभिणिषुडुञ्चे, थणुपविमिषा गामं वा एयरं वा जाव रायहाणि वा तणाइं जाइज्जा जाव संयरिज्जा, इत्थवि समए कायं य जोगं य ईरिय य एत्थस्सराइज्जा, तं मज्जं मत्थावाई ओए तिण्णे धिएणकंदंक्के आइय्हे थणार्इए चिन्चाणं भेउरं कायं संबिह-
णिय विस्सस्स वरीमहावसग अस्मि विस्समंणए भेरवमणुच्चिण्णे तत्थावि तस्स कालपरियाए, से वि तत्थ विर्यतिकारए, इत्थेयं विमोहागवर्णं दियं सुहं सुमं सिस्सेमं आणुगाग्रियं ति वेमि ॥ २२३ ॥

अन्यपार्थः—(अम ए) जित (जित्तम्) साधु के मन में (एवं मया) इत प्रकार का विचार उत्पन्न होता है कि (अनु) निघए ही (इत्थम्) इत (मए) समय में (अ) में (एवं) इत (वरीणं) अपने शरीर का (अणुपुञ्जेणं) क्रमशः (अविहितए) निर्वाह करने में (असाध) श्वाति को प्राप्त होता है । (वे) वह (अणुपुञ्जेणं) क्रमशः (आहारं) आहार का (संबद्धिज्जा) रचाए करके तथा (कलए) कयायों को (एत्थए) पतला (विस्सा) करके (अविहितए) शरीर के व्यापार को नियमित करे मथवा अपने विचारों को समाधिस्थ करे । (जुए) पण्डितमणु के लिए उत्पन्न होकर (अणुगवट्ठे) काठ के पाटे की तरह निश्चल होकर (अभिणिषुडुञ्चे) शरीर के समताप से रहित होने की इच्छा वाला (अमए) साधु (गम) प्राप्त (ता) मथवा (अयदं) नगर (आध) पाथस् (रायहाणि) राजधानी में (अणुपविमिषा) प्रवेश करके-आकर (तणाए) तुलों की (आरग्ग) पाचना करे (अल) वात्थस् तुलों की पाचना करके उम्हे (संबद्धिज्जा) विविधपूर्वक विधाये । (एत्थेयं) इत (अलए) समय में (कावं) शरीर (वा) और (अने) जोग (अ) —————

पाद और आभ्यन्तर परिग्रह को (विद्वान्) जान कर एवं त्याग कर (अनुपुत्री) अनुक्रम से संयम की क्रियाओं का पालन करके (संनए) पथायोग्य मरण का निश्चय करके (आरंभो-कर्मण्यो) आरम्भ से अथवा कर्मों से (निश्च) छूट जाने दें ॥ २ ॥

भाषार्थः—बुद्धिमान समयी पुरुष यथाक्रम से संयम की क्रियाओं का पालन करके अन्तिम समय में भक्तपरिष्ठा, इंगितमरण और पादपोषणमन इन तीन मरणों में से में किस मरण के योग्य हैं, यह निश्चय करके उसी मरण द्वारा समाधिपूर्वक तरीर त्याग कर आरम्भ से निवृत्त हो जाते हैं और अनुक्रम से कर्मों से छूट जाते हैं ॥

कसाए पयणए किन्ना, अप्पाहारे नितियखए । अह भियन् गिलाइज्जा, आहारस्सेव अंतियं ॥ ३ ॥

अन्यथार्थः—यह साधु (क्याए) कथाओं को (पयणए) पतला (किन्ना) करके (अपपाहारे) बल्य आहार करे । यदि कोई कठोर पचन कहे तो उन्हें (नितियखए) सहन करे । (अह) यदि इस प्रकार करता हुआ (भियन्) साधु (गिलाइज्जा) आहार के बिना ग्लानि को प्राप्त हो तो भी (आहारस्सेव) आहार के (अंतिय) पाल भी न जाये अर्थात् आहार की इच्छा न करे ॥ ३ ॥

भाषार्थः—भक्तपरिष्ठा आदि त्रिविध मरण में से (कमी एक मरण को प्राप्त करने के लिए उचित हुआ साधु पहले कथाओं की संलेखना करे अर्थात् कथाओं को पतला करे । कथाओं को पतला करता हुआ साधु आहार की मात्रा को भी पटाता जाय और बहुत थोड़ा भोजन करे । ऐसा करते हुए यदि बुधापरिवह अधिक सतावे तो भी साधु आहार की इच्छा न करे अर्थात् वह यह न सोचे कि "मैं थोड़े दिन और आहार का लूँ फिर संलेखना कहूँगा" ।

नोटः—इस गाथा में "आहारस्सेव अंतियं" यह पद दिया है किन्तु इसके आगे कुछ भी क्रिया पद नहीं दिया है । इसलिपि वाक्य की पूर्ति के लिए यदि 'न गन्देन' क्रिया का आस्थाहार किया जाय तब तो इस वाक्य का सही अर्थ होगा ॥

विदुष्ये ॥ ८ ॥

मन्त्रादौ तु तद्विना, तद्वै नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥
मन्त्रादौ तु तद्विना, तद्वै नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥

नर नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥
नर नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥

मन्त्रादौ तु तद्विना, तद्वै नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥
मन्त्रादौ तु तद्विना, तद्वै नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥

मन्त्रादौ तु तद्विना, तद्वै नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥
मन्त्रादौ तु तद्विना, तद्वै नृत्त्यन्वितामर । मन्त्राने उच्यते, मन्त्रस्मैदि विदुष्ये ॥ ८ ॥





पृथ्विं य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगाइं वीगहरियाइं, तसकायं य सव्वसो खुच्चा ॥१२॥
 पणगाइं मंति पडिलेइं, चित्तमंताइं मे अभिएणाय । परिवअिय विहरित्थ्या, इय मंखाय से महावीरि ॥१३॥

अन्यथाार्थः— पृथ्वीकाय (आउकायं) अलकाय (तेउकाय) वायुकाय (पणगाइं) पनक (वीगदरियाइं) नील (नील) और (तसकाय) प्रमकाय को (मन्थो) सर्व रूप से (गाउचा) जान कर (य) तथा (पणगाइं) ये सब (चित्तमंताइं) सन्निवृत्त हैं (मन्थो) पन्था निचार कर (य) और (अभिएणाय) समझ कर तथा (मे) इनकी हिंसा से पाप लागता है (इय-इइ) ऐसा (तंगाय) जान कर महावीरि प्रमथान महारीर स्वामी (विहरित्थ्या) इनकी हिंसा का त्याग करते (विहरित्थ्या) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

भावार्थः—प्रमथान महावीर स्वामी पृथ्वीकाय, अलकाय, तेउकाय, वायुकाय, पनरूपतिहाय और प्रमकाय इन चारों का जेतन चान कर इनका पारम्य पार्थीन हिंसा न करने हुए विचरने थे ।

अद्वैतवादाय तमत्ताए, तमा य थावरत्ताए । अद्वैता सव्वजोणिया सत्ता, कम्मणा कल्पिया पुढो चाला ॥१४॥

अन्यथाार्थः—(कम्मणा) कर्म से यानी कर्मों के पट्टीभूत होकर (थावरा) स्थावर जीव (तंगणाए) प्रस रूप में परिणत होते हैं (अद्वैता) अथवा (त्ता-तमत्ताए) प्रस प्राणी (थावरत्ताए) स्थावर रूप में परिणत होते हैं (अद्वैता) अथवा (सव्वजोणिया) सर्व जोनि चाले हैं (अद्वैता) अद्वैती (मन्थो) जीव-कर्मों के पट्टीभूत होकर (पुढो) भिन्न भिन्न योनियों में (कल्पिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४॥

भावार्थः कर्मों के पट्टीभूत होकर प्रस जीव पृथ्वीकायादि स्थावर योनियों में और स्थावर जीव प्रस योनियों में प्रत्यक्ष होते हैं । अथवा सभी योनियों में प्रस जीव रागद्वेष से युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में प्रत्यक्ष होते रहते हैं ।

पुद्गलं च यातुकामं च, नेतुकामं च यातुकामं च । पणमाहं वीयहरिणाहं, तसकामं च सव्यसो गच्छता ॥१२॥

तपारं गंगि पट्टिन्द, चिनपंनाडं मे अभिगमाय । परियत्रिय विहरित्या, इय मंखाय से महावीरे ॥१३॥

[illegible]

मानार्थः तत्त्वज्ञानस्य अर्थो मूर्खीकाय, अज्ञेयकाय, तद्वैकाय, वायुकाय, भस्मवैकाय और प्रसक्तकाय इन छहों कार्यों का निवृत्त करना व इनका त्याग करने द्वारा न करने हुए विनश्यते योग ।

यद् भावस्य न नमनात्, नमा य श्रावरनात् । यद्वा मध्यजोनिया सत्ता, कम्मुणा कपिया पुढो वाला ॥१४॥

अन्तर्यामी :- (आश्चर्य) कम में गानी कमों के पन्नीभूत होकर (गलत) स्यायर रूप में परिणत होते हैं (आश्चर्य) प्रत्य प्राणी (पाप/नाप) स्यायर रूप में परिणत होते हैं (झुंझा) अभया (गन्धोलिया) सर्व योनि वाले अन्तर्यामी (गन्ध) जीव-कमों के पन्नीभूत होकर (गुदो) मित्र मित्र योनियों में (हथिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४ ॥

मातापुत्रः कदापि न भोग्यते इति प्रसङ्गः योनिर्मात्रेण भोग्यते इति प्रसङ्गः योनिर्मात्रेण भोग्यते इति प्रसङ्गः योनिर्मात्रेण भोग्यते इति प्रसङ्गः

पुढविं य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगाइं वीयहरियाइं, तसकायं य सव्वसो गुल्वा ॥१२॥
एयाइं संति पडिलेहं, चित्तमंताइं मे अभिएणाय । परिचलिय चिहरिया, इय संखाय से महावीरि ॥१३॥

अन्यथार्थः— (पुढविं) पृथ्वीकाय (वाउकायं) अल्पाय (तेउकायं) वायुकाय (पणगाइं) पनक (वीयहरियाइं) चीज, हरित (य) और (तसकाय) व्रसकाय को (गयसो) सर्व रूप से (तस्सा) जान कर (य) तथा (एयाइं) ये सब (चित्तमंताइं) सन्निच (मति) हैं (गंत्तेहं) ऐसा निचार कर (य) और (आमणाय) समझ कर तथा (मे) इनकी हिंसा मे पाप लगता है (इय-इह) ऐसा (संखाय) जान कर (महावीर) शमयान् महावीर स्वामी (गंत्तेहं) इनकी हिंसा का त्याग करते (चिहरिया) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

माथार्थः—शमयान् महावीर स्वामी पृथ्वीकाय, अल्पकाय, तेउकाय, वायुकाय, पनस्पतिकाय और व्रसकाय इन द्रव्यों कायों को चेतन जान कर इनका आरम्भ अर्थात् हिंसा न करते हुए विचरते थे ।

अद् यावरा य तमत्ताए, तमा य थावरत्ताए । अद्वा सव्वजोणिया सत्ता, कम्मणा कप्पिया पुढो चाला ॥१४॥

अन्यथार्थः—(कम्मणा) कर्म से (यानी कर्मों के पक्षीभूत होकर) (थावरा) स्थावर जीव (तंगताए) व्रस रूप में परिणत होते हैं (अद्वा) अथवा (तमा-तमत्ताए) व्रस प्राणी (यावराए) स्थावर रूप में परिणत होते हैं (अद्वा) अथवा (सव्वजोणिया) सर्व योनि चाले (चाला) अमाना (सत्ता) जीव-कर्मों के पक्षीभूत होकर (पुढो) भिन्न भिन्न योनियों में (कप्पिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४ ॥

माथार्थः कर्मों के पक्षीभूत होकर व्रस जीव पृथ्वीकायादि स्थावर योनियों में और स्थावर जीव व्रस योनियों में व्रस होते हैं । अथवा सभी योनि चाले जीव रागद्वेष से युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं ।



प्रद्विं य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगाइं जीयहरियाइं, तसकायं य सव्वसो गुल्चा ॥१२॥
 पयाइं मंति पडिन्हें, चित्तमंताइं मे अभिगणाय । परिचयिय विहरिया, इय संलाय से महावीरि ॥१३॥

अन्वयार्थः— पृथ्वीकाय (आउकायं) अणुकाय (तेउकाय) वायुकाय (पणगाइं) पनक (चोयदरियाइं) चीज, हरित (य), और (यगकाय) प्रसकाय को (गन्धो) स्वर्ग रूप से (गाइवा) जान कर (य) तथा (एयाइं) ये सय (चित्तमंताइं) सन्निवृत्त हैं (मंति पडिन्हें) एसा निजान कर (य), और (अभिगणाय) समझ कर तथा (मे) इनकी हिंसा से पाप लगता है (इय-इइ) ऐसा (संलाय) जान कर महावीर महावीर स्वामी (परिचयिय) इनकी हिंसा का त्याग करके (विहरिया) निचरते थे ॥ १२-१३ ॥

भावार्थः— समग्रान महावीर स्वामी पृथ्वीकाय, अणुकाय, तेउकाय, वायुकाय, धनस्वतिकाय और प्रसकाय इन द्रव्यों कायों को चेतन जान कर इनका पारम्भ यथोक्त हिंसा न करते हुए विचरते थे ।

यद् धानस य तमत्ताण, तमा य धावरत्ताण । अद्वा सव्वजीगिया सत्ता, कम्मणा कप्पिया पुढो चाला ॥१४॥

अन्वयार्थः— (कम्मणा) कर्म से यानी कर्मों के पट्टीभूत होकर (धावरत्ता) स्यावर जीव (तंगताण) प्रस रूप में परिणत होते हैं (अद्वा) अथवा (सत्ता-तमत्ता) प्रस प्राणी (वावरत्ताण) स्यावर रूप में परिणत होते हैं (अद्वा) अथवा (सव्वजीगिया) सर्व योनि वाले (चाला) अग्रानी (गणा) जीव-कर्मों के पट्टीभूत होकर (पुढो) भिन्न भिन्न योनियों में (कप्पिया) परिवर्तित होते रहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः कर्मों के पट्टीभूत होकर प्रस प्रस जीव पृथ्वीकायादि स्यावर योनियों में और स्यावर जीव प्रस योनियों में इत्येक होते हैं अथवा सभी योनि वाले जीव भगद्वेष से युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं ।

पृथक् य आउकायं य, तेउकायं य वाउकायं य । पणगाइं चीगहरियाइं, तसकायं य सव्यसां म० ॥ १२ ॥
प्याइं मंति पडिजेहें, निचमंताइं मे अभिगणाय । पयिअिग विहरिया, इय मंलाय से महावीरे ॥ १३ ॥
अन्यथाः— (पृथक्) पृथ्वीकाय (वायुकाय) अल्पकाय (तेउकाय) वायुकाय (पणगाइं) पनक (बीयदरियाइं)
पीज, हरि (१) और (नयकाय) प्रसकाय को (मंलाय) स्वयं रूप मे (पणगाइं) जान कर (२) तथा (प्याइं) ये सय (विगतताइं) सन्निच
(३) है (४) उभा विचार कर (५) और (वायुकाय) समझ कर तथा (६) इनकी हिंसा मे पाप लगता है (७-१६) ऐसा (संगाय)
जान कर (महावीर) सममान महावीर स्वामी (नरेश्वर) इनकी हिंसा का त्याग करते (भिरिया) निरस्ते थे ॥ १२-१३ ॥

मार्थाः— सममान महावीर स्वामी पृथ्वीकाय, अल्पकाय, तेउकाय, वायुकाय, पनकपाय इन दृष्टां कायों
को नष्टन जान कर इनका आधार अर्थोत्तर हिंसा न करने हुए विचारते थे ।

अरु थायरा य तमचाण, तमा य थायरचाण । अरुना सव्यजोगिया सचा, कम्मणा करिया पुढो चाला ॥ १४ ॥

अन्यथाः— (१) कामं मे मानी कामों के पत्नीभूत होकर (भायरा) स्यावर रूप में परिणत होते हैं (अरुना) अथवा (तमा-तमचाण) प्रस प्रानी (भायरा) स्यावर रूप में परिणत होते हैं (अरुना) अथवा (तमचाणिया) स्वयं योनि वाले
हैं (अरुना) अथवा (तमा-तमचाण) प्रस प्रानी (भायरा) स्यावर रूप में परिणत होते हैं (अरुना) अथवा (तमचाणिया) स्वयं योनि वाले
(भायरा) स्यावी (भायरा) जीव-कर्मों के पत्नीभूत होकर (पुढो) मित्र मित्र योनियों में (कणिया) परिणतिन होते रहते हैं ॥ १४ ॥

मार्थाः— कामों के पत्नीभूत होकर प्रस जीव पृथ्वीकायादि स्यावर योनियों में और स्यावर जीव प्रस योनियों में अल्प होते
हैं । अथवा समी योनि वाल जीव समवेय में युक्त होकर अपने किये हुए कर्मों के अनुसार मित्र मित्र योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं ।

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥



पार्श्व का हेतु था (न) डर का (बाल्य) भगवान् सेवन नहीं करते थे किन्तु (विश्व) प्रायुक्त (भुक्ति) आहार का सेवन करते थे ॥
 भावार्थ:—भगवान् ने आधाकर्म आहार का कभी सेवन नहीं किया था क्योंकि आधाकर्म आहारादि के सेवन से आठ प्रकार के कर्मों का बन्ध होता भगवान् ने देखा था। इसी तरह जिन जिन कार्यों से पाप होता भगवान् ने देखा था उन सब को छोड़ कर वे प्रायुक्त आहार का सेवन करते थे ॥

यो सेवइ य परवर्त्यं, परपाए वि से ख भुजित्या । परिषज्जियाण ओमाणं, गच्छइ संखहि अतरणयाए ॥१६॥

अन्वयार्थ:—भगवान् (परवर्त्यं) उत्तम वस्त्र अथवा दूसरे के वस्त्र का (लो सेव) सेवन नहीं करते थे (य) चौर (परपाए वि) दूसरों के पात्र में भी (ह) वे (ण भुजित्या) नहीं खाते थे। वे (ओमाणं) अपमान को (परिषज्जियाण) त्याग कर (अतरणयाए) अग्नीनभाष से (संखहि) आहार के स्थान में (गच्छइ) जाते थे ॥ १६ ॥

भावार्थ:—भगवान् महावीर स्वामी बहुमूल्य वस्त्रों को या दूसरे के वस्त्रों को धारण नहीं करते थे। तथा वे दूसरे के पात्र में भी भोजन नहीं करते थे। वे अपमान का सवाल न करके अग्नीन वृत्ति से आहार के स्थान में जाते थे ॥

मायएणे असणपायस्स, एणुगिद्धे रसेतु अपहिण्णे । अस्सि वि यो पमज्जिया, यो वि य कंदूयए सुखी गायं ॥२०॥

अन्वयार्थ:—भगवान् (असणपायस्स) आहार पानी के (मायएणे) परिमाण को जानते थे। वे (रसेतु) रसों में (एणुगिद्धे) आसक्त नहीं होते थे तथा (अपहिण्णे) 'आज अमुक्त मिश्रण भोजन ही होगा' ऐसी प्रतिक्रिया भी वे नहीं करते थे। नेत्र की पुल्लि निका- लने के लिए उन्होने कभी (अपहिण्णे) आंसू का (लो वि पमज्जिया) प्रमांजन भी नहीं किया (य) चौर (सुखी) उन मुनि भगवान् ने (गायं) अपने शरीर में (ले वि कंदूयए) कभी लाज भी नहीं की ॥ २० ॥



वार्थः—भगवान् शिशिर ऋतु के आरम्भ में ही उस देवदूत वस्त्र को त्याग कर अपनी मुद्राओं को पैला कर चलने में लगे हैं। तब पौर्णमासी में ही उन देवदूत वस्त्र को त्याग कर अपनी मुद्राओं को पैला कर चलने में लगे हैं।
 एस विद्वांसुखंते, माहर्षेण मद्रमया । बहुसो अपट्टिण्णेषु, भगवया एवं रीयंति सि वेमि ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः (मद्रमया) मतिमान् (अपट्टिण्णेषु) निदान रहित (माहर्षेण) माहर्षि (भगवया) भगवान् महावीर स्वामी ने (सुखंते) अनेक प्रकार से (एस) इसी (विद्वांसुखंते) विधि का (अपट्टिण्णेषु) आचरण किया था इसलिए भगवन् मोक्षार्थी आत्मसौ को (एस) इसी प्रकार (माहर्षेण-मतिमान्) आचरण करना चाहिए । (मि वेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी ने पूर्वोक्त प्रकार से आचरण किया था इसलिए हमारे मोक्षार्थी पुद्गल को भी इसी प्रकार आचरण करना चाहिए ऐसा श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं ॥

॥ इति नवम अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

नवम अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

पा०
प्र०

पहले उद्देशक में भगवान् की चर्चा का वर्णन किया गया है, अब उस यसनि का वर्णन किया जाता है जहाँ भगवान् ठहरते थे।
चरियामगाइं निज्जाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ। आइक्ख ताइं रागणासणाइं जाइं सेविरया से महावीरे ॥१॥

अन्वयार्थः—(चरया) भगवान् महावीर स्वामी की चर्चा में (जाओ) जो (एगइयाओ) कितनेक (आसणा) आसन और (निज्जाओ) शय्याएँ (बुइयाओ-गइयाओ) कही गई हैं (जाइं) जिन्हें (शे) उन (महावीरे) भगवान् महावीर स्वामी ने (सेविरया) सेवन किया था (ताइं) उन (रागणासणा) शय्या और आसनों के विषय में (आइक्ख) आप मुझ से कहिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जन्मस्वामी अपने गुरु श्री मुग्गोस्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! भगवान् महावीर स्वामी ने जैसी शय्या और आसनादि का सेवन किया था उन शय्या और आसन आदिक विषय में कृपा कर आप मुझ से कहिये।

आवंगगमभापवासु, पग्गियमालासु एगया वासो। अदुवा पलियट्ठाण्येसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ॥ २ ॥

अन्वयार्थः भगवान् महावीर स्वामी (एगया) कमी (आवेसण) जिसके चारों तरफ दीवार यनी हुई हो ऐसे सूते घर में, (गला) स्वामी और (वास) व्याकु के स्थान में और (पग्गियमालासु) दूरानों में (वासो) निवास करते थे (अदुवा) अथवा (एगया) कमी (पलियट्ठाण्येसु) यदृङ्घ और लुहार आदि के कार्य करने के स्थान में और (पलालपुंजेसु) मंच के ऊपर रखे हुए तृणपुच्छ के नीचे (वासो) निवास करते थे ॥ २ ॥

अ० आ०
द्वि० ३०

२८३

भावीयः—भगवान् शशिः शत्रु के आरम्भ में ही उस देवदूत वर को त्याग कर अपनी मुखाद्यो को पैना कर चढ़ते थे परन्तु शीतल न पीहित होकर नृजात्रो को मज्जुचित नहीं करे थे तथा कृषो का अवलम्बन भी नहीं लेते थे ॥

एष विही अणुकर्तव्यो, माहर्ण्ये मरमया । बहुमो अपटिण्णेषु, मगवया एवं रीयंति नि वेमि ॥ २३ ॥

अन्वयाथः (मरमया) मलिमान (अपटिण्णेषु) निदान रदिन (माहर्ण्ये) माहर्ण्ये (मगवया) मगवान् महावीर स्वामी ने (अनेक प्रकार से (एष इमी (अपटि) विधि का (अणुकर्तव्यो) आचरण किया था इसलिए अग्न मोक्षायो को (एव) इसी प्रकार (मार्थान्-मगवे) आचरण करना चाहिये । (एष इमी) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २३ ॥

भावीयः—भगवान् महावीर स्वामी ने पूर्वोक्त प्रकार में आचरण किया था इसलिए दूसरे मोक्षायो पुरुषो को भी इसी प्रकार आचरण करना चाहिये ऐसा श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य श्री अम्बुस्वामी ने कहते हैं ॥

॥ इति नवम अध्यायन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी कभी मूल पर समा, प्याऊ और दूकान में निवास करते थे और कभी यदई चौर लुहार काय कराने के स्थान में और मछ के ऊपर रखे हुए वृणों के नीचे निवास करते थे ॥

आर्गनांग आगमागार, तह य खगं वि एगया वासो । सुमाणे सुएणगारे वा, खखुमूले वि एगया वासो ॥३॥

अन्वयार्थः—भगवान् महावीर (ज्या) कभी (आगगारे) मुखाफिरो के उत्तरे के स्थान में यानी धर्मशाला आदि में, (आगगारे) घर्षाचे में वन हुए मकान में ॥ ३४ ॥ और कभी (एगारे वि) नगर में (वासो) निवास करते थे । (एगया) कभी (नुवाले) दमशान में (सुएणगारे) दीवार रहित मृने घर में (वा) अथवा कभी (खखुमूले वि) वृक्ष के नीचे भी (वासो) निवास करते थे ॥ ३५ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी अक्सर के अनुसार कभी धर्मशाला में, कभी बगीचे में वने हुए मकान में, कभी नगर में, कभी दमशान में, कभी मूल घर में और कभी वृक्ष के नीचे निवास करते थे ॥

एणदि घुणो गयणेहि, ममणे आमि पंतरमवासि । राईदियंवि जयमाणे, अपमणे समाहिण भार ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(गुणी) तपस्या में रत मुनि (यण्णे) धमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एणदि) इन (मण्णेरि) स्थानों में (अपमणे) उत्कृष्ट तेरह वर्ष तक अर्थान् तेरह वर्ष से अधिक नहीं किन्तु तेरह वर्ष से कुछ कम समय तक (आमि) निवास किया था । वे (राद दिव वि-रादं दिव वि) रात दिन (जयमाणे) संवत्स के अनुष्ठान में गहनान् रहते थे । वे (अमणे) कभी प्रमाद नहीं करते थे एवं (आहिण) स्थिर चिन्त होकर (आद) धर्मस्थान गुरुलस्थान ध्याने थे ॥ ४ ॥

भावार्थः—धमण भगवान् महावीर स्वामी तेरह वर्ष से कुछ कम समय तक इन गुणों पर गहन

। इदं हो घाता लो मगवान् वसको निवृत्ति के लिए रीतकाज की रात में अपने स्थान से बाहर कर ग्यान में स्थित हो जाते थे ।

पुनसंगा, भीमा बासी अणेरूया य । तसप्या य ले पाणा, अदुवा ले पक्सियो उपपरंति ॥७॥

अन्यार्थः—मगवान् (सहोदर) जिन स्थानों में टहरते थे (तत्) वहाँ (अणेरूया) अनेक प्रकार के (भीमा) भयंकर (वपसर्ग) (बाजी) हुए थे (य) और (अ) जो (संस्पर्ण पाणा) सरक कर चलने वाले प्राणी हैं उन सर्प, नकुल आदि प्राणियों द्वारा (अदुवा) तथा (अ) जो (पक्सियो) पक्षी (स्वर्चरि) समीप आकर मांसभक्षण करते थे उन गीघ आदि प्राणियों द्वारा बहुत से उपसर्ग हुए ।
भावार्थः—जहाँ मगवान् टहरते थे वहाँ रीत, ऊष्ण, अनुशूल और प्रतिशूल अनेक प्रकार के भयङ्कर वपसर्ग हुए । टहरने पर सर्प और नकुल आदि द्वारा तथा रमयान में गीघ और शृगाल आदि मांसभक्षी प्राणियों द्वारा अनेक भयङ्कर वपसर्ग हुए ।

अदु कुचरा उपचरंति, गामरवखा य सत्तिहत्या य । अदु गामिया उपसंगा, इत्थी एगाया पुरितो य ॥८॥

अन्यार्थः—मगवान् को कभी (कुचरा) चोर और पारदारिक आदि (अदु) और कभी (जतिहत्या) शक्ति और माला आदि काट कर खने वाले (गामरवखा) गामरक्षक पुरुष (उपचरंति) उपसर्ग करते थे (य) और (एगाया) कभी (गामिया) गाम के (रत्नी) रत्नी या (पुरितो) पुरुष द्वारा (जतिहत्या) वपसर्ग विधे जाते थे ॥ ८ ॥

वार्थः—सूले पर में टहरने पर चोर और पारदारिक आदि द्वारा वपसर्ग विधे जाते थे और बाजार में दूकान आदि पर

अन्वयार्थः—एगचरा वि एगया राश्रो । अक्वाहिण कसाइर्या, पेहमाणे समाहि अण्डिएणे ॥११॥

अन्वयार्थः—(एगया) कभी कभी (तब) वहाँ पर (तबो) रात्रि के समय (एगचरा) अकेले घूमने वाले परछी लम्पट आदि (अणेहि) पुरूप (स) भगवान् महावीर स्वामी से (अण्डिएणे) पूछते थे और (अक्वाहिण) भगवान् के कुछ न बोलने पर (कसार्या) वे क्रोधित होते थे परन्तु भगवान् (समाहि) समाधि में (पेहमाणे) तल्लीन रहते हुए (अण्डिएणे) अपने सम्मान का बदला लेने की इच्छा नहीं करते थे ॥ ११ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी एक पक्ष अधिक साढ़े पारह वर्ष तक अकेले विचरे थे । उस समय जब वे सूने पर आदि में ठहरते थे तब रात्रि के समय परछी लम्पट जार आदि २ आकर उनसे पूछते थे कि “तू कौन है ? क्यों का है ? यहाँ क्यों ठहरा हुआ है ?” किन्तु भगवान् कुछ भी उत्तर नहीं देते थे । तब वे अज्ञानी क्रोधित होकर भगवान् को पीटते थे । भगवान् इन सब परीयों को समभावपूर्वक सहन करते थे किन्तु बदला लेने की कमी इच्छा नहीं करते थे ।

अपमंतरंसि को इत्य, अदमंसिसि भिक्खु आइहु । अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाएण भाइ ॥१२॥

अन्वयार्थः—(इत्य) यहाँ (अतरसि) इस मकान के अन्दर (अव) यह (को) कौन है ? ऐसा पूछने पर (अव) मैं (भिक्खु) भिक्षु (अव भि) हूँ इस प्रकार (आइहु) कह कर भगवान् (तुसिणीए) चुप हो जाते थे । (कसार्या) यदि वे क्रोधित होते तो (अव) इस परीपद को समभावपूर्वक सहन करना (उत्तमे) उत्तम (धम्मे) धर्म है ऐसा जानकर (सि) वे भगवान् चुपचाप रहकर (आइ) सुभ-
प्यान में संलग्न रहते थे ॥ १२ ॥



करते थे (अपिच्छे) वे यह इच्छा भी न करते थे कि 'मुझे पवन रहित स्थान मिले' । जिस स्थान में भगवान् ठहरते थे वह प्रायः (यद्, नीचं) कटुवा आंगन वाला होता था । (एषा) कभी कभी (रात्रि) रात्रि के समय (मगध) भगवान् (लिस्वस्म) धगने ठहरे हुए स्नात से बाहर निकल कर (समिधाय) शान्तिपूर्वक नीत को सहन करते हुए (आए) स्थित रहते थे ॥१३॥से॥१५॥

भावार्थः—(शिशिर श्रुतु में साधारण व्यक्ति शीत से कापने लगने और अन्यतीर्थिक साधु शीतनियारण के लिए कज्जल आदि की याचना करने और पवनरहित स्थान का आश्रय लेने तथा कितनेक तोलकड़ी लडा कर शीत की निवृत्ति करते हैं । शीतस्पर्श की पीडा बड़े-ट सट होती है इमालत वे लोग ऐसा करते हैं किन्तु उव शिशिरश्रुतु में भगवान् महावीर स्वामी समभावपूर्वक शीतस्पर्श को सहन करते थे । वे यह इच्छा भी नहीं करते थे कि मुझे पवनरहित स्थान मिले । कभी कभी रात्रि के समय भगवान् अपने ठहरे हुए स्थान से बाहर निकल कर शीतस्पर्श को समभावपूर्वक सहन करते हुए ध्यानस्थ खड़े रहते थे ।

एवम विही अणुसंज्ञो, साहणेण महमया । बहुसो अपडिएले, भगवया एवं रीयंति ॥ १६ ॥ त्ति वेमि ॥

अन्ययार्थः—(महमया) यत्तिमान् (अपडिएले) निदान रहित (माहणेण) माहन (मावया) भगवान् महावीर स्वामी ने (बुलो) बहुत बार (एव) इस (बिहो) विधि का (अणुसंज्ञो) आचरण किया था । इसलिये अग्य मोक्षार्थी आत्माओं को भी (एव) इसी प्रकार (रीयंति-रिचंति) आचरण करना चाहिए (त्ति वेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १६ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी ने पूर्वोक्त प्रकार से आचरण किया था । इसलिये दूसरे मोक्षार्थी पुरुषों को भी उनका अनुकरण करना चाहिए ऐसा श्री सुघमांस्वामी अपने शिष्य जन्तू स्वामी से कहते हैं ।

॥ इति नवम अध्ययन का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥



आशा से लड़े दिखाई देते थे उनको किसी भी प्रकार की बाधा एवं अन्तराय पहुंचाये बिना भगवान् वहाँ से धीरे धीरे चले जाते थे और उन प्राणियों पर अपने मन में अप्रीति भी न लाते थे । कुछ प्रादि प्राणियों को दिसा न करते हुए भगवान् भिषाटन करते थे ।

अबि ग्रह्यं वा सुकं वा, सीपरिदं पुणकुम्भामं । अदु युक्कमं वा, लद्धे पिडे अलद्धे दधिण ॥ १३ ॥

अन्यार्थः—(एहं) भोजा हुआ (वा) अथवा (युक्क) सूखा हुआ, (सीपरिदं) ठण्डा आहार (वा) अथवा (पुणकुम्भामं) घट्टन का उकड़ का आहार (युक्कं) पुणने घान का आहार (अदु) अथवा (पुल्लं) जो आदि नीरस धान्य के घने हुए (पिडे) आहार के (लद्धे) मिलने पर (वा) अथवा (अलद्धे) न मिलने पर (दधिण) भगवान् शान्त रहते थे ॥ १३ ॥

भावार्थः—सूखा, सूजा, ठण्डा उकड़ों का अथवा पुराने तथा नीरस धान्य का बना हुआ, जैसा भी आहार भगवान् को मिल जाता, वे उसी में सन्तोष करते थे । आहार के मिलने पर या न मिलने पर भगवान् सदा शान्त रहते थे ॥

अबि माइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए भाणं । उड्डं अंदे य तिरियं य लोए, मायइ पेइमाणे सपाहिमपडिण्णे । १४ ।

अन्यार्थः—(ॐ) वे (महावीरे) भगवान् महावीर स्वामी (आसणत्थे) उरकटुक, वीरासन आदि आसनो से बैठ कर (अकुक्कुए) निर्विकार भाव से (अण्णे) धर्मध्यान गुरुलक्षण (उड्डं) ध्याने थे (य) और (यत्तिहि) अपने अन्तःकरण की शुद्धि को (पिक्खणे) देखते हुए (अतिरिण्णे) निरीद भाव से (उक्कुए) ऊर्च्य लोक (अंदे) अचोलोक (य) और (तिरियं) तिर्यक् लोक (लोए) इन तीनों लोकों के स्वरूप का (मायइ) ध्यान में विचार करते थे ॥ १४ ॥

भावार्थः—भगवान् उरकटुक, गोदोहिका, वीरासन आदि आसनो से बैठ कर धर्मध्यान, गुरुलक्षण किया करते थे और वे

एस विही अणुस्कन्तो, मादयेण मइमया । पट्टमो अपट्टिएणेण, भगवया एवं रीयंति नि वेमि ॥१७॥

अन्वयार्थः—(मइमया) मउत्तिमान् (अपट्टिएणेण) निशान रटित (भगवया) भगवान् महावीर स्वामी ने (पट्टमो) पट्टन बार (एण) एस (विही) विधि का (अणुस्कन्तो) आचरण किया था । एसत्तिप भगव मोक्षार्थी आत्माओं को भी (एवं) एसी प्रकार (रीयन्ति) आचरण करना चाहिये (इन् वेमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १७ ॥

भावार्थः—भगवान् महावीर स्वामी ने पूर्वोक्त प्रकार में आचरण किया था । एसत्तिप दूसरे भोक्तार्थी पुरुषों को भी इसी प्रकार आचरण करना चाहिये । ऐसा श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य धम्मस्वामी से कहते हैं ॥

॥ इति श्री आचारगङ्ग मृत्त का ब्रह्मचर्य नामक त्रयम श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥



५६	१०	शुद्धि	५२	५२	५२	(लोहक रेह)	५२	(लोहक रेह)
६०	१०	विद्युत्	५३	५३	५३	आणाया	५३	आणाया
६० से ६४	१३	प्र० ३०	६१	६१	६१	(ए बद्धे)	६१	(ए बद्धे)
६५	१५	मावदय	६५	६५	६५	आरम्भ कर दे	६५	आरम्भ न कर दे
६४	७	दे	६५	६५	६५	मच्छे	६५	मच्छे
६७	७	हर	६६	६६	६६	(बच्छे)	६६	(बच्छे)
६९	६	तय	६६	६६	६६	मारे	६६	मारे
७१	१	विबिध	६६	६६	६६	(ए)	६६	(ए)
७१	२	पैत्रिक	६७	६७	६७	माला	६७	माला
७३		पा० ३०	६७	६७	६७	(युद्धि)	६७	(युद्धि)
७१	१३	रखन	६७	६७	६७	संसिचमाणा	६७	संसिचमाणा
७४	४	(शि बंमि)	६७	६७	६७	(बद्धे)	६७	(बद्धे)
७४	८	नीन्दा	६७	६७	६७	मुक्त	६७	मुक्त
७४	५	जाना	६७	६७	६७	विद्युत्	६७	विद्युत्
७५	११	पहिमाह	६७	६७	६७	महाभ्यो	६७	महाभ्यो
७५	८	(आहार)	६७	६७	६७	करना	६७	करना
७६	३	अणुहा	६७	६७	६७	भोजनी	६७	भोजनी
७६	९	धनोपकरणो	६७	६७	६७		६७	



